नया लौह पुरुष

अमित शाह और राष्ट्र-निर्माण की पटेल परंपरा

"सरदार पटेल ने लगभग अठारह महीनों में 600 रियासतों को एक किया, परंतु जम्मू-कश्मीर के एकीकरण का कार्य अधूरा रह गया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने उस शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है।"

— अमित शाह, 24 अगस्त 2019

2026

नया लौह पुरुष

अमित शाह और राष्ट्र-निर्माण की पटेल परंपरा

प्रथम संस्करण · 2026

यह एक अप्रकाशित पांडुलिपि है।

सर्वाधिकार सुरक्षित।

विषय-सूची

लेखकीय *(प्रस्तावना)* 6

भूमिका — दो लौह पुरुष, एक संकल्प 8

खंड एक — जड़ें और निर्माण 11

अध्याय 1 मनसा से बम्बई तक: वंश, बचपन और संस्कार 13

अध्याय 2 संघ की पाठशाला और 1982 की वह भेंट 23

अध्याय 3 सहकारिता से संगठन तक: रणनीतिकार का उदय 33

अध्याय 4 सरदार पटेल: एक राष्ट्र का शिल्पकार 41

अध्याय 5 अधूरा सपना: पटेल, नेहरू और कश्मीर 53

खंड दो — सत्ता, संगठन और एकीकरण 61

अध्याय 6 गुजरात गृह मंत्री: शासन की प्रयोगशाला 63

अध्याय 7 भाजपा का पुनर्निर्माण: विश्व का सबसे बड़ा दल 71

अध्याय 8 आधुनिक चाणक्य: बूथ से राष्ट्र तक 79

अध्याय 9 अनुच्छेद 370: पटेल का अधूरा कार्य पूर्ण 89

खंड तीन — सुधार और संकल्प 99

अध्याय 10 तीन तलाक: करोड़ों बहनों की गरिमा 101

अध्याय 11 समान नागरिक संहिता: एक राष्ट्र, एक विधान 109

अध्याय 12 नागरिकता संशोधन अधिनियम: शरणार्थियों को न्याय 117

अध्याय 13 नक्सलवाद का अंत: विकास और सुरक्षा 125

अध्याय 14 राम मंदिर: सदियों का संकल्प, धैर्य की विजय 133

अध्याय 15 सहकारिता गणराज्य: एक मौन क्रांति 141

खंड चार — अडिग दृष्टि **149**

अध्याय 16 संसद में अडिग: आलोचना के सामने चट्टान 151

अध्याय 17 भारत का बिस्मार्क: लौह पुरुष की परंपरा 159

अध्याय 18 एकता की प्रतिमा: पटेल-विरासत का स्मारक 167

अध्याय 19 दीर्घकालिक राष्ट्रवाद बनाम अल्पकालिक तुष्टिकरण 175

अध्याय 20 उपसंहार: नए भारत का शिल्पकार 185

परिशिष्ट **193**

समर्पण

राष्ट्र की एकता और अखंडता के उन सभी शिल्पकारों को, जिन्होंने तात्कालिक लोकप्रियता के बजाय दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण का मार्ग चुना — सरदार वल्लभभाई पटेल से लेकर आज तक।

आभार

यह पुस्तक उन असंख्य अभिलेखों, संसदीय कार्यवाहियों, समाचार-स्रोतों, जीवनियों और शोध-दस्तावेज़ों के आधार पर तैयार की गई है, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के राष्ट्र-निर्माण की कथा को सुरक्षित रखा है। तथ्यों, तिथियों और उद्धरणों को यथासंभव प्रामाणिक स्रोतों से सत्यापित करने का प्रयास किया गया है, ताकि यह कृति केवल एक श्रद्धांजलि न रहकर एक विश्वसनीय वृत्तांत भी बने।

लेखकीय (प्रस्तावना)

इतिहास कुछ ही व्यक्तियों को यह अवसर देता है कि वे किसी राष्ट्र की भौगोलिक और संवैधानिक आत्मा को नए सिरे से गढ़ सकें। सरदार वल्लभभाई पटेल ऐसे ही एक व्यक्ति थे। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब वह स्वतंत्रता एक खंडित, बिखरी हुई भूमि के रूप में आई थी — 565 रियासतें, अपनी-अपनी संप्रभुता का दावा करती हुई, एक उपमहाद्वीप को सैकड़ों टुकड़ों में बाँट देने को तत्पर। यह पटेल की दृढ़ इच्छाशक्ति, कूटनीतिक चातुर्य और आवश्यकता पड़ने पर बल-प्रयोग की तत्परता थी, जिसने इन टुकड़ों को एक राष्ट्र में पिरो दिया। इसी कारण उन्हें "लौह पुरुष" कहा गया।

परंतु इतिहास अधूरे कार्य भी छोड़ जाता है। पटेल का एक स्वप्न अधूरा रह गया — जम्मू और कश्मीर का पूर्ण एकीकरण। अनुच्छेद 370 के रूप में जो "अस्थायी" व्यवस्था बनी, वह सात दशकों तक एक स्थायी विसंगति बनकर खड़ी रही। पटेल का असमय निधन 15 दिसंबर 1950 को हो गया, और उनका यह अधूरा कार्य इतिहास की प्रतीक्षा-सूची में दर्ज हो गया।

यह पुस्तक एक केंद्रीय विचार के इर्द-गिर्द बुनी गई है: कि स्वतंत्र भारत के गृह मंत्रालय की उसी परंपरा में, सात दशक बाद, एक और व्यक्ति खड़ा हुआ जिसने राष्ट्र की दीर्घकालिक एकता को अल्पकालिक राजनीतिक तुष्टिकरण से ऊपर रखा — अमित शाह। 5 अगस्त 2019 को, जब उन्होंने राज्यसभा में अनुच्छेद 370 को निष्प्रभावी करने का संकल्प प्रस्तुत किया, तो यह केवल एक विधायी कार्रवाई नहीं थी; यह पटेल के अधूरे कार्य की पूर्णता थी।

यह तुलना अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि स्वयं सरकार, भाजपा के विचारकों और अनेक टिप्पणीकारों द्वारा बार-बार खींची गई एक स्पष्ट रेखा है। केवड़िया में खड़ी

182 मीटर ऊँची "स्टैचू ऑफ़ यूनिटी", हर 31 अक्टूबर को मनाया जाने वाला "राष्ट्रीय एकता दिवस", और 2019 में अनुच्छेद 370 का निरसन — ये तीनों मिलकर एक ही कथा को जन-स्मृति में स्थापित करते हैं: पटेल जिसने आरंभ किया, शाह जिसने पूर्ण किया।

इस पुस्तक का स्वर स्पष्ट रूप से प्रशंसात्मक है। यह अमित शाह को एक राष्ट्र-निर्माता के रूप में प्रस्तुत करती है। परंतु प्रशंसा का अर्थ तथ्यों से विमुख होना नहीं है। यहाँ प्रस्तुत प्रत्येक तिथि, आँकड़ा और उद्धरण प्रामाणिक स्रोतों पर आधारित है। एक ऐसी पुस्तक जो अपने नायक का सम्मान करना चाहती है, उसे झूठ की बैसाखी की आवश्यकता नहीं — सत्य ही उसका सबसे सशक्त तर्क है।

आलोचक कहेंगे कि शाह के निर्णय विवादास्पद रहे हैं; कि अनुच्छेद 370, सीएए, और समान नागरिक संहिता पर तीखी आपत्तियाँ उठीं। यह पुस्तक इन आपत्तियों से मुँह नहीं मोड़ती — बल्कि उनका सामना करती है और यह दिखाती है कि एक राष्ट्र-निर्माता की पहचान यही है कि वह आलोचना की आँधी में भी अपने दीर्घकालिक संकल्प से विचलित नहीं होता। जैसा कि शाह ने स्वयं कहा: "चाहे जो हो जाए" — सरकार अपने मार्ग से नहीं हटेगी।

यह उसी अडिगता की कहानी है।

❦

भूमिका — दो लौह पुरुष, एक संकल्प

कल्पना कीजिए दो दृश्यों की, जिनके बीच ठीक सात दशकों का अंतराल है।

पहला दृश्य: 1947–48 का काल। नई दिल्ली के एक कक्ष में सरदार वल्लभभाई पटेल बैठे हैं। उनके सामने भारत का मानचित्र है — परंतु यह मानचित्र एक सम्पूर्ण राष्ट्र का नहीं, बल्कि सैकड़ों स्वतंत्र रियासतों का है। हैदराबाद का निज़ाम स्वतंत्रता का स्वप्न देख रहा है; जूनागढ़ का नवाब पाकिस्तान की ओर झुक रहा है; और कश्मीर की घड़ी टिक-टिक कर रही है। पटेल के पास न तो असीमित समय है, न असीमित संसाधन। उनके पास है तो केवल एक अडिग संकल्प — कि यह भूमि एक रहेगी, अखंड रहेगी। और वे इस संकल्प को पूरा करते हैं — कहीं कूटनीति से, कहीं समझौते से, और जहाँ आवश्यक हो वहाँ बल से।

दूसरा दृश्य: 5 अगस्त 2019। राज्यसभा का सभागार खचाखच भरा है। गृह मंत्री अमित शाह अपने स्थान से उठते हैं और एक ऐसा संकल्प प्रस्तुत करते हैं जिसे सात दशकों से "असंभव" माना जाता रहा — अनुच्छेद 370 का निरसन। विपक्ष का शोर चरम पर है, परंतु शाह की आवाज़ स्थिर है। कुछ ही घंटों में वह संकल्प पारित हो जाता है, और जम्मू-कश्मीर का सात दशक पुराना विशेष दर्जा इतिहास बन जाता है। उस शाम, अमित शाह उसी गृह मंत्रालय की कुर्सी पर बैठे थे जिस पर कभी सरदार पटेल विराजमान थे।

इन दोनों दृश्यों के बीच की रेखा संयोग नहीं है। यह एक सुविचारित ऐतिहासिक निरंतरता है, जिसे स्वयं अमित शाह ने 24 अगस्त 2019 को अनादपुर की एक सभा में शब्द दिए: "सरदार पटेल ने लगभग अठारह महीनों में *600* रियासतों को एक किया, परंतु जम्मू-कश्मीर के एकीकरण का कार्य अधूरा रह गया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने उस शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है।"

यह पुस्तक इसी निरंतरता की कथा है। यह दो व्यक्तियों की कहानी है जो अलग-अलग युगों में, परंतु एक ही पद पर, एक ही संकल्प के साथ खड़े हुए — कि राष्ट्र की एकता और अखंडता किसी भी अल्पकालिक राजनीतिक लाभ से बड़ी है।

परंतु यह केवल अनुच्छेद 370 की कथा नहीं है। यह उस समूचे दर्शन की कथा है जिसे हम "दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण बनाम अल्पकालिक तुष्टिकरण" कह सकते हैं। तीन तलाक का उन्मूलन, समान नागरिक संहिता की दिशा में कदम, नागरिकता संशोधन अधिनियम, नक्सलवाद के विरुद्ध निर्णायक अभियान, और राम मंदिर का सदियों पुराना संकल्प — ये सभी एक ही सूत्र में पिरोए हुए हैं। प्रत्येक निर्णय आरंभ में विवादास्पद रहा; प्रत्येक पर तीखी आलोचना हुई; और प्रत्येक के पीछे यही तर्क खड़ा रहा कि राष्ट्र का दीर्घकालिक हित किसी समुदाय-विशेष के अल्पकालिक तुष्टिकरण से ऊपर है।

इस पुस्तक के पन्नों में हम अमित शाह के जीवन को आरंभ से देखेंगे — मनसा के एक व्यापारी परिवार से लेकर उत्तर ब्लॉक की उस कुर्सी तक जहाँ से देश की आंतरिक सुरक्षा का संचालन होता है। हम देखेंगे कि कैसे एक 16 वर्षीय स्वयंसेवक, एक सहकारी बैंक का सबसे युवा अध्यक्ष, और एक "आधुनिक चाणक्य" के रूप में विख्यात रणनीतिकार धीरे-धीरे उस व्यक्ति में परिणत हुआ जिसे आज पटेल की परंपरा का उत्तराधिकारी कहा जाता है।

यह कथा धैर्य की है, अनुशासन की है, और सबसे बढ़कर — उस अडिगता की है जो किसी भी सच्चे राष्ट्र-निर्माता की पहचान होती है।

इस पुस्तक की संरचना

यह पुस्तक चार खंडों और बीस अध्यायों में विभाजित है। प्रथम खंड — "जड़ें और निर्माण" — अमित शाह के आरंभिक जीवन, संघ-दीक्षा, सहकारी-संगठन के उदय, और सरदार पटेल की राष्ट्र-निर्माण की गाथा को प्रस्तुत करता है, ताकि पाठक उस आधारभूमि को समझ सके जिस पर यह समूचा भवन खड़ा है।

द्वितीय खंड — "सत्ता, संगठन और एकीकरण" — गुजरात के गृह मंत्री से लेकर भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष तक, और अंततः अनुच्छेद 370 के ऐतिहासिक निरसन तक की यात्रा को आच्छादित करता है।

तृतीय खंड — "सुधार और संकल्प" — शाह के प्रमुख निर्णयों की एक-एक करके पड़ताल करता है: तीन तलाक, समान नागरिक संहिता, नागरिकता संशोधन अधिनियम, नक्सलवाद का अंत, राम मंदिर, और सहकारिता-क्रांति।

चतुर्थ और अंतिम खंड — "अडिग दृष्टि" — शाह की संसदीय अडिगता, लौह-पुरुष की परंपरा, एकता की प्रतिमा का प्रतीकवाद, और अंततः उस केंद्रीय दर्शन का विश्लेषण करता है जो इस समूची पुस्तक का सूत्र है — दीर्घकालिक राष्ट्रवाद बनाम अल्पकालिक तुष्टिकरण।

प्रत्येक अध्याय एक सशक्त दृश्य या उद्धरण से आरंभ होता है, तथ्यों और घटनाक्रम के माध्यम से आगे बढ़ता है, पटेल-शाह समानांतर को रेखांकित करता है, और एक सार के साथ समाप्त होता है। पुस्तक के अंत में एक कालक्रम, आलोचनाओं और उनके प्रत्युत्तरों का संकलन, और स्रोत-टिप्पणी संलग्न है।

एक शब्द आलोचना के विषय में

इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि यह आलोचना से मुँह नहीं मोड़ती। एक प्रशंसात्मक कृति होने के बावजूद, यह प्रत्येक प्रमुख निर्णय की सबसे सशक्त आलोचनाओं को प्रस्तुत करती है, और फिर उनका प्रत्युत्तर देती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि एक सच्चे राष्ट्र-निर्माता की महानता इसी में निहित है कि वह आलोचना की आँधी में भी अडिग रहता है। आलोचना को छिपाना उस अडिगता को कमज़ोर करना होगा; उसका सामना करना उसे और सुदृढ़ करना है।

यह कथा धैर्य की है, अनुशासन की है, और सबसे बढ़कर — उस अडिगता की है।

आइए, इस यात्रा का आरंभ वहीं से करें जहाँ से हर कथा आरंभ होती है — जड़ों से।

खंड एक — जड़ें और निर्माण

अध्याय 1

मनसा से बम्बई तक: वंश, बचपन और संस्कार

“मनुष्य की नियति उसके जन्म से नहीं, उसके संस्कारों से तय होती है।”

किसी भी जीवन को समझने का सबसे प्रामाणिक मार्ग उसकी जड़ों से होकर जाता है। राजनीति के मंच पर अमित शाह को हम एक प्रचंड रणनीतिकार, एक अडिग गृह मंत्री, और एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानते हैं जिसकी एक दृष्टि-मात्र से नौकरशाही सतर्क हो जाती है। परंतु इस सार्वजनिक प्रतिमा के पीछे एक लंबी, धैर्यपूर्ण और संस्कार-सिंचित यात्रा है — और वह यात्रा गुजरात के एक छोटे-से क़स्बे की संकरी गलियों से आरंभ होती है। इस अध्याय में हम उस आधारभूमि को देखेंगे जिस पर भविष्य का यह व्यक्तित्व खड़ा हुआ।

गुजरात के गांधीनगर ज़िले में, अहमदाबाद से लगभग पचास किलोमीटर उत्तर में, एक छोटा-सा क़स्बा बसा है — मनसा। मंदिरों की घंटियों, संकरी गलियों और परंपरागत हवेलियों से भरा यह क़स्बा सदियों से व्यापार का एक केंद्र रहा है। यहीं, इन्हीं गलियों में, अमित शाह के परिवार की जड़ें कम-से-कम चार पीढ़ियों गहरी धँसी हुई हैं। और यह केवल एक भौगोलिक तथ्य नहीं है — यह उस चरित्र की आधारशिला है जो आगे चलकर भारतीय राजनीति का सबसे सुसंगठित रणनीतिकार बना।

अमित अनिलचंद्र शाह का जन्म 22 अक्टूबर 1964 को बम्बई (वर्तमान मुंबई) में हुआ। भारत सरकार की आधिकारिक जीवनी उनके परिवार को “एक संपन्न गुजराती परिवार” बताती है। परंतु परिवार का हृदय बम्बई में नहीं, बल्कि मनसा में धड़कता था — वह मनसा जो बम्बई से लगभग साढ़े चार सौ किलोमीटर उत्तर में बसा था, और जहाँ परिवार की चार पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं। शाह के परदादा मनसा रियासत के “नगरसेठ” थे — अर्थात् क़स्बे के प्रमुख नागरिक और राजा के सलाहकार। यह पद केवल सम्मान का प्रतीक नहीं था; इसमें व्यापार और नागरिक

मामलों में मध्यस्थता का अधिकार निहित था। एक ऐसे वंश से आना जहाँ व्यापार और नागरिक नेतृत्व साथ-साथ चलते थे, अमित शाह के व्यक्तित्व में दोनों की छाप छोड़ गया — व्यापारी की गणनात्मक सूक्ष्मता और नेता की संगठन-क्षमता।

परिवार गुजराती हिंदू बनिया जाति से आता है — गुजरात का परंपरागत व्यापारी और साहूकार वर्ग। यहाँ एक भ्रांति का निवारण आवश्यक है: अनेक लोग शाह को जैन मान लेते हैं, परंतु स्वयं उन्होंने स्पष्ट किया है — "मैं हिंदू वैष्णव हूँ, जैन नहीं।" वैष्णव परंपरा, विष्णु के प्रति भक्ति और कर्मकांडीय अनुशासन के साथ, वह आध्यात्मिक वातावरण थी जिसमें यह परिवार साँस लेता था। प्रतिदिन की पूजा, शाकाहारी भोजन, और व्रत-त्योहारों का कैलेंडर — जन्माष्टमी, दीवाली, नवरात्रि — इस घर की दिनचर्या को संरचना देते थे।

एक रियासत का नगरसेठ: वंश की सामाजिक भूमि

मनसा कोई साधारण क़स्बा नहीं था — यह स्वतंत्रता-पूर्व भारत की उन सैकड़ों छोटी रियासतों में से एक की राजधानी थी जिनका एकीकरण आगे चलकर सरदार पटेल के जीवन का सबसे बड़ा कार्य बना। यह एक मार्मिक संयोग है कि जिस व्यक्ति को आगे चलकर पटेल की एकीकरण-परंपरा का उत्तराधिकारी कहा जाएगा, उसका अपना परिवार ठीक उसी रियासती व्यवस्था के एक केंद्र में पीढ़ियों से बसा हुआ था जिसे पटेल ने भारत-संघ में पिरोया।

नगरसेठ का पद इस रियासती संरचना में एक विशिष्ट स्थान रखता था। वह न केवल क़स्बे का सबसे प्रतिष्ठित व्यापारी होता था, बल्कि राजा और प्रजा के बीच का सेतु भी। व्यापारिक झगड़ों का निपटारा, समुदाय के सामूहिक हितों की रक्षा, संकट के समय धन और नेतृत्व का प्रबंध — ये सब नगरसेठ के उत्तरदायित्व थे। ऐसे परिवार में जन्म लेने का अर्थ था एक ऐसी विरासत में जन्म लेना जहाँ नेतृत्व कोई बाहरी महत्वाकांक्षा नहीं, बल्कि वंश का स्वाभाविक स्वभाव था। इस प्रकार अमित शाह को विरासत में केवल संपन्नता नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और मध्यस्थता का एक सहज संस्कार मिला।

पिता का व्यापार, माता का अनुशासन

अमित शाह के पिता, अनिलचंद्र शाह, मनसा के एक व्यवसायी थे जिन्होंने दो विशिष्ट उद्यम खड़े किए। पहला था पीवीसी पाइप निर्माण का एक सफल कारख़ाना — थर्मोप्लास्टिक पाइप बनाने वाली एक इकाई, जो गुजरात की तेज़ी से बढ़ती ग्रामीण और शहरी जल-अवसंरचना परियोजनाओं को आपूर्ति करती थी। दूसरा, और कहीं अधिक उल्लेखनीय, अहमदाबाद स्टॉक एक्सचेंज का अध्यक्ष पद। इसका अर्थ यह था कि परिवार गुजरात की औद्योगिक और वित्तीय धमनियों के ठीक चौराहे पर बैठा था। पिता ने अपने पुत्र को यह देखने का अवसर दिया कि बाज़ार कैसे चलते हैं, पूँजी कैसे प्रवाहित होती है, और नेटवर्क कैसे बनते हैं।

यह कोई साधारण विरासत नहीं थी। एक ओर पीवीसी पाइप का कारख़ाना उत्पादन, आपूर्ति-शृंखला और मापनीय उत्पादन का पाठ पढ़ा रहा था; दूसरी ओर स्टॉक एक्सचेंज की अध्यक्षता संख्याओं, जोख़िम और मानवीय व्यवहार के आकलन का। आगे चलकर जब अमित शाह को “आधुनिक चाणक्य” कहा गया — एक ऐसा रणनीतिकार जो बूथ-स्तर के गणित में महारत रखता है — तो उस क्षमता के बीज इसी पारिवारिक वातावरण में पड़े थे।

उनकी माता, श्रीमती कुसुमबेन शाह, ने वही भूमिका निभाई जो गुजरात के बनिया परिवारों में परंपरागत रूप से स्त्रियों को सौंपी जाती थी — धार्मिक दिनचर्या की संरक्षक, आहार-अनुशासन की प्रहरी, और घर का नैतिक केंद्र। कुसुमबेन का निधन 8 जून 2010 को एक बीमारी के कारण हुआ — एक ऐसी क्षति जिसके विषय में शाह ने सार्वजनिक रूप से बहुत कम बोला है। माता के संस्कारों ने उस अनुशासन की नींव रखी जो आज भी उनकी दिनचर्या में दिखाई देता है — चाहे वह शाकाहार हो, समय की पाबंदी हो, या कार्य के प्रति अविचल समर्पण।

यह उल्लेखनीय है कि एक बनिया-वैष्णव घर में स्त्री की यह भूमिका कोई गौण भूमिका नहीं थी। घर की धार्मिक दिनचर्या — प्रातःकालीन पूजा से लेकर व्रत-त्योहारों के विस्तृत कैलेंडर तक — माता के अनुशासन से ही संचालित होती थी। शाकाहार की कठोरता, भोजन की पवित्रता, और दिन का संगठित क्रम — ये सब वे संस्कार थे जो माता की देखरेख में बालक के मन में गहरे उतरे। आगे चलकर जब अमित शाह उत्तर ब्लॉक के अपने कार्यालय में भी घर से आया शाकाहारी भोजन ही

ग्रहण करेंगे और इस दिनचर्या से कभी विचलित नहीं होंगे, तो वस्तुतः वे माता के उन्हीं संस्कारों का निर्वाह कर रहे होंगे।

मेहसाणा का बचपन: एक "शांत स्वभाव" का बालक

जिन शोधकर्ताओं ने शाह के आरंभिक जीवन का पुनरावलोकन किया, उन्होंने उन्हें बचपन में "काफ़ी शांत स्वभाव" का बालक बताया है — गलियों में क्रिकेट और ज़मीन पर कंचे, यही उनके छोटे क़स्बे के साधारण सुख थे। उनका बचपन दो स्थानों के बीच बँटा हुआ था — बम्बई की प्राथमिक शिक्षा और उत्तर गुजरात के मेहसाणा की हाई-स्कूल शिक्षा। परंतु इस शांत सतह के नीचे एक रोचक विडंबना छिपी थी। उसी रिपोर्टिंग के अनुसार, अन्य छात्र उन्हें तंग करते थे — उनकी स्लेट तोड़ देते, उनका टिफ़िन छीन लेते। विद्यालय आरंभ में उन्हें वह आत्मविश्वास नहीं दे पाया जो पारिवारिक जीवन ने दिया था; शिक्षक उन्हें "बुरा व्यवहार" करने के लिए प्रायः प्रधानाचार्य के कक्ष में बुलाते थे।

यह प्रसंग गौण नहीं है। यह उस दृढ़ता की ओर संकेत करता है जो "शांत स्वभाव" की सतह के पीछे चुपचाप आकार ले रही थी — एक उत्तरजीविता की प्रवृत्ति, जो आगे चलकर संगठनात्मक संघर्ष में बदल गई। जो बालक स्कूल के मैदान में अपनी स्लेट और टिफ़िन के लिए डटा रहा, वही व्यक्ति आगे चलकर राजनीतिक रणभूमि में चट्टान की तरह खड़ा रहने वाला था।

इस विरोधाभास पर थोड़ा और ठहरना उचित है, क्योंकि यह शाह के व्यक्तित्व की एक केंद्रीय कुंजी है। "शांत स्वभाव" और "दृढ़ता" — ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक प्रतीत होते हैं। वह बालक जो शोर नहीं मचाता था, जो अपनी पीड़ा का बखान नहीं करता था, परंतु जो अपनी स्लेट और टिफ़िन के लिए चुपचाप अड़ा रहता था — उसमें वह विशिष्ट संयोजन पहले से ही दिखाई देता है जो आगे चलकर उनकी पहचान बनेगा: बाहर शांति, भीतर इस्पात। राजनीति के भावी मंच पर भी वे कभी अनावश्यक शोर नहीं मचाएँगे; वे चुपचाप, धैर्यपूर्वक, अपनी रणनीति बुनेंगे, और जब समय आएगा तब अडिग रहेंगे। उस स्वभाव की पहली झलक मेहसाणा के उसी स्कूल-मैदान में दिखाई दी थी।

शाह का किशोरावस्था एक परंपरागत हवेली में बीती — गुजराती आँगन वाला वह घर जो पुश्तैनी निवास और सामाजिक मंच, दोनों का काम करता है। ऐसे घर धार्मिक जीवन के केंद्र भी होते हैं, और शाह वैष्णव कर्मकांड में रचे-बसे बड़े हुए। बनिया अनुशासन का यह लोकाचार — मितव्ययिता, संगठनात्मक व्यवस्था और धार्मिक निष्ठा का मेल — उनके भीतर गहरे उतर गया। वे 16 वर्ष की आयु तक मनसा में रहे, और फिर परिवार के साथ अहमदाबाद की ओर अध्ययन के लिए बढ़े।

हवेली का जीवन: एक संस्कृति का सूक्ष्म पाठ

गुजराती हवेली केवल एक भवन नहीं होती; वह एक समूची सामाजिक व्यवस्था का सूक्ष्म रूप होती है। इसके केंद्रीय आँगन में परिवार के सदस्य एकत्र होते, अतिथियों का स्वागत होता, और सामुदायिक निर्णय लिए जाते। एक कोने में पूजा-स्थल होता, जहाँ दिन की शुरुआत और अंत आराधना से होते। यहाँ बड़ों के प्रति आदर, अतिथि-सत्कार, और सामूहिकता के प्रति निष्ठा कोई उपदेश नहीं, बल्कि प्रतिदिन का व्यवहार थे।

ऐसे वातावरण में पला बालक स्वाभाविक रूप से कुछ मूल्य आत्मसात कर लेता है — पदानुक्रम के प्रति सम्मान, सामूहिक हित के प्रति समर्पण, और व्यवस्था के प्रति निष्ठा। आगे चलकर जब अमित शाह संघ की शाखा के पदानुक्रम में, और फिर भाजपा के संगठनात्मक ढाँचे में, सहजता से रच-बस गए, तो यह कोई आकस्मिक अनुकूलन नहीं था — यह उस हवेली-जीवन का स्वाभाविक विस्तार था जिसमें वे बड़े हुए थे। संगठन और पदानुक्रम उनके लिए अपरिचित अवधारणाएँ नहीं, बल्कि बचपन से परिचित जीवन-व्यवस्थाएँ थीं।

जैव रसायन का विद्यार्थी

मेहसाणा में विद्यालयी शिक्षा के पश्चात शाह उच्च शिक्षा के लिए अहमदाबाद आए और सी. यू. शाह साइंस कॉलेज में प्रवेश लिया, जहाँ से उन्होंने जैव रसायन (बायोकेमिस्ट्री) में स्नातक (बी.एससी.) की उपाधि प्राप्त की। गुजरात विश्वविद्यालय से संबद्ध यह निजी संस्थान 1980 के दशक के अहमदाबाद में विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए एक सम्मानजनक गंतव्य था।

जैव रसायन का चुनाव एक ऐसे व्यक्ति के लिए कुछ कौतूहलपूर्ण लगता है जो आज एक राजनीतिक रणनीतिकार के रूप में विख्यात है। परंतु यह उस पद्धतिगत, आँकड़ा-प्रिय अनुशासन के अनुरूप ही था जो उनके व्यक्तित्व की पहचान बना। जैव रसायन एक ऐसा विषय है जो प्रयोगशाला की कठोर साधना और व्यावहारिक विश्लेषण को जोड़ता है — आगत (इनपुट), प्रक्रिया, और मापनीय परिणाम के संदर्भ में सोचना। अध्ययन के साथ-साथ शाह परिवार के पीवीसी पाइप व्यवसाय में भी काम करते रहे — उद्यमिता की एक आरंभिक शिक्षुता। विज्ञान ने उन्हें प्रक्रियाओं और परिणामों के संदर्भ में सोचना सिखाया; घर ने सौदेबाज़ी की कला सिखाई। इन दोनों ने मिलकर उस बूथ-स्तरीय गणित की पूर्वपीठिका रची जिसके लिए वे आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

जैव रसायन की प्रयोगशाला में एक विशिष्ट प्रकार की मानसिक आदत बनती है — कि परिणाम भावना से नहीं, प्रमाण से तय होते हैं; कि प्रत्येक प्रयोग को नियंत्रित चरों के साथ दोहराया जा सकना चाहिए; और कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरण भी अंतिम परिणाम को बदल सकता है। यह वैज्ञानिक मनोवृत्ति आगे चलकर शाह की राजनीतिक कार्यशैली में स्पष्ट रूप से दिखाई दी। जब वे एक चुनावी अभियान को मतदाता-सूची के एक-एक पन्ने तक तोड़ते थे, जब वे ज़मीनी वास्तविकता का आकलन करने के लिए स्वयं विवरणों का सत्यापन करते थे — "सटीक आकलन के लिए विवरणों का सत्यापन आवश्यक था," उन्होंने कहा — तो वे वस्तुतः एक प्रयोगशाला-वैज्ञानिक की पद्धति को राजनीति में लागू कर रहे थे।

बनिया-वैष्णव लोकाचार: एक संस्कृति जो चरित्र बन गई

अमित शाह के व्यक्तित्व को समझने के लिए गुजराती बनिया-वैष्णव संस्कृति को समझना अनिवार्य है, क्योंकि यह केवल एक धार्मिक या जातीय पहचान नहीं थी — यह जीवन जीने की एक समूची पद्धति थी, जो आगे चलकर उनकी राजनीतिक कार्यशैली में अनूदित हो गई।

बनिया समुदाय सदियों से भारत के व्यापार और वित्त की रीढ़ रहा है। इस समुदाय का लोकाचार कुछ विशिष्ट मूल्यों पर टिका है — मितव्ययिता, लेखा-जोखा की सूक्ष्मता, दीर्घकालिक योजना, जोख़िम का सतर्क आकलन, और सबसे बढ़कर,

धैर्य। एक बनिया व्यापारी जानता है कि लाभ रातोंरात नहीं आता; वह एक-एक लेन-देन से, एक-एक संबंध से, धीरे-धीरे अर्जित किया जाता है। यही धैर्य, यही दीर्घकालिक दृष्टि, अमित शाह की राजनीति की पहचान बनी — वह व्यक्ति जो पंद्रह वर्ष तक चुनाव न लड़कर संगठन गढ़ता रहा, और जो सात दशक पुरानी संवैधानिक विसंगतियों को धैर्यपूर्वक सुलझाने का संकल्प रखता था।

बनिया लोकाचार का एक और आयाम लेखा-जोखा की संस्कृति है — बही-खाता। एक बनिया परिवार में हर लेन-देन का हिसाब रखा जाता है, हर मद का लेखा होता है, और कुछ भी अनियोजित नहीं छोड़ा जाता। यह जवाबदेही और मापनीयता की संस्कृति है। आगे चलकर जब शाह भाजपा के संगठन को एक-एक बूथ, एक-एक कार्यकर्ता, एक-एक पन्ने के स्तर तक हिसाब-योग्य बनाएँगे, तो यह वस्तुतः उसी बही-खाता संस्कृति का राजनीतिक अनुवाद होगा। संगठन को संख्याओं में ढालना, हर इकाई की जवाबदेही तय करना — यह एक बनिया का स्वाभाविक व्याकरण था।

वैष्णव परंपरा ने इसमें एक आध्यात्मिक आयाम जोड़ा। प्रतिदिन की पूजा, व्रत-उपवास का अनुशासन, शाकाहार की कठोरता, और मंदिर-केंद्रित सामाजिक जीवन — ये सब एक ऐसे व्यक्तित्व को गढ़ रहे थे जिसके लिए अनुशासन कोई बाहरी अनुशासन नहीं, बल्कि भीतर से उपजी एक स्वाभाविक दिनचर्या थी। आगे चलकर, जब पत्रकार यह उल्लेख करेंगे कि गृह मंत्री शाह कार्यालय में ही घर से आया शाकाहारी भोजन मँगाते हैं और भोजन के लिए घर नहीं लौटते, तो वे वस्तुतः उसी बनिया-वैष्णव अनुशासन का साक्षात्कार कर रहे होंगे जो इस हवेली में रचा-बसा था।

नगरसेठ का वंश: नेतृत्व की विरासत

शाह के परदादा का "नगरसेठ" होना केवल एक उपाधि नहीं था; यह एक भूमिका थी जिसने परिवार के सामूहिक चरित्र को आकार दिया। नगरसेठ — अर्थात् क़स्बे का प्रमुख नागरिक — राजा और प्रजा के बीच एक सेतु था। वह व्यापारिक विवादों का निपटारा करता, समुदाय के हितों का प्रतिनिधित्व करता, और संकट के समय नेतृत्व प्रदान करता। यह एक ऐसी भूमिका थी जिसमें मध्यस्थता, संगठन और निर्णय-क्षमता तीनों की माँग थी।

इस वंश-परंपरा का महत्व यह है कि अमित शाह के परिवार में नेतृत्व कोई नई या अर्जित वस्तु नहीं थी — वह रक्त में थी। जब एक युवा अमित शाह आगे चलकर बूथ-स्तर के कार्यकर्ताओं को संगठित करेंगे, या रियासतों के एकीकरण की पटेल-परंपरा को आगे बढ़ाएँगे, तो वे वस्तुतः उसी मध्यस्थता और नेतृत्व की विरासत को निभा रहे होंगे जो उनके परदादा ने मनसा की गलियों में निभाई थी।

पिता की दोहरी विरासत: उत्पादन और पूँजी

अनिलचंद्र शाह के दो उद्यमों — पीवीसी पाइप का कारख़ाना और स्टॉक एक्सचेंज की अध्यक्षता — पर थोड़ा और रुकना आवश्यक है, क्योंकि ये दोनों मिलकर एक असाधारण शैक्षिक वातावरण रचते थे।

पीवीसी पाइप का कारख़ाना एक "वास्तविक अर्थव्यवस्था" का उद्यम था — जहाँ कच्चा माल आता, उत्पादन होता, आपूर्ति-शृंखला चलती, और एक मूर्त उत्पाद बाज़ार तक पहुँचता। यहाँ युवा अमित ने सीखा कि कोई भी बड़ा परिणाम छोटे-छोटे, सुव्यवस्थित चरणों का योग होता है — एक ऐसा पाठ जो आगे चलकर उनके "पन्ना प्रमुख" मॉडल में प्रतिध्वनित हुआ, जहाँ एक विशाल चुनावी विजय को मतदाता-सूची के एक-एक पन्ने तक तोड़ दिया गया।

दूसरी ओर, स्टॉक एक्सचेंज की दुनिया एक "अमूर्त अर्थव्यवस्था" थी — जहाँ संख्याएँ, संभावनाएँ, और मानवीय मनोविज्ञान का खेल चलता था। यहाँ का पाठ था: जोख़िम का आकलन, अनिश्चितता में निर्णय, और भीड़ के मनोविज्ञान को पढ़ना। यही कौशल आगे चलकर उस "आधुनिक चाणक्य" में दिखाई दिया जो चुनावी मानचित्र को एक सट्टेबाज़ की सूक्ष्मता और एक गणितज्ञ की परिशुद्धता से पढ़ता था।

स्टॉक एक्सचेंज की अध्यक्षता का एक और निहितार्थ था — संस्था-संचालन का अनुभव। स्टॉक एक्सचेंज केवल एक बाज़ार नहीं, बल्कि सदस्यों, नियमों और हितों का एक जटिल संगठन भी होता है, जिसका अध्यक्ष विभिन्न पक्षों के बीच संतुलन साधता है। बालक अमित ने अपने पिता को इस संस्थागत भूमिका में देखा होगा — हितों की मध्यस्थता करते, विवादों को सुलझाते, और एक संगठन को सुचारु रूप से चलाते। यह दृश्य उस नगरसेठ की भूमिका का ही एक आधुनिक संस्करण था जो

परदादा ने निभाई थी। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी, परिवार में संस्था-संचालन और मध्यस्थता का एक सूत्र अटूट चलता रहा।

इस प्रकार, अमित शाह को विरासत में केवल संपन्नता नहीं, बल्कि दो भिन्न प्रकार की बुद्धिमत्ता मिली — उत्पादन की व्यवस्थित बुद्धि और पूँजी की रणनीतिक बुद्धि। और इन दोनों के मेल ने उस अद्वितीय व्यक्तित्व को जन्म दिया जो संगठन और रणनीति, दोनों में समान रूप से निपुण था।

वंश की छाप

जब हम अमित शाह के आरंभिक जीवन को समग्रता में देखते हैं, तो एक स्पष्ट चित्र उभरता है। मनसा के नगरसेठ वंश ने उन्हें मध्यस्थता और नागरिक नेतृत्व की प्रवृत्ति दी। स्टॉक एक्सचेंज के अध्यक्ष पिता ने उन्हें संख्याओं, नेटवर्क और जोख़िम-आकलन का प्रारंभिक पाठ पढ़ाया। वैष्णव-बनिया संस्कृति ने उन्हें मितव्ययिता, अनुशासन और धार्मिक निष्ठा दी। और मेहसाणा के स्कूल-मैदान की चुनौतियों ने उन्हें वह शांत दृढ़ता दी जो आगे चलकर उनकी पहचान बनी।

यह कोई आकस्मिक राजनीतिक व्यक्ति नहीं था जो संयोगवश शिखर तक पहुँच गया हो। यह एक "गढ़ा हुआ" व्यक्तित्व था — एक ऐसे वंश की संतान जिसमें व्यापार, नेतृत्व और भक्ति की धाराएँ साथ-साथ बहती थीं। और इस गढ़न का अगला, और संभवतः सबसे निर्णायक, चरण तब आरंभ हुआ जब इस किशोर ने पहली बार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में क़दम रखा।

वह कथा अगले अध्याय की है।

अध्याय 2

संघ की पाठशाला और 1982 की वह भेंट

हर महान साझेदारी का एक आरंभ-बिंदु होता है। भारतीय राजनीति की सबसे प्रभावशाली साझेदारी — नरेंद्र मोदी और अमित शाह की — का आरंभ-बिंदु 1982 का अहमदाबाद है। परंतु उस भेंट को समझने से पहले हमें उस संस्था को समझना होगा जिसने इन दोनों को एक-दूसरे के निकट लाया, और जिसने अमित शाह के विश्व-दृष्टिकोण को आकार दिया — राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ।

शाखा का बुलावा

कॉलेज में प्रवेश से भी पहले, शाह अपने मोहल्ले की एक स्थानीय आरएसएस शाखा में जाने लगे थे। संघ की विचारधारा से प्रेरित होकर, उन्होंने 16 वर्ष की आयु में, 1980 में, औपचारिक रूप से एक स्वयंसेवक के रूप में संघ में प्रवेश किया। उन्होंने स्वयं को साक्षात्कारों में गर्व के साथ “एक गौरवान्वित स्वयंसेवक” कहा है, और इस बात पर बल दिया है कि स्वयंसेवक या प्रचारक होने का अर्थ है — “राष्ट्र-निर्माण के लिए समस्त सुख-सुविधाओं का त्याग।”

संघ ने उनके भीतर तीन स्थायी आदतें अंकित कीं, जो आगे चलकर उनके समूचे राजनीतिक जीवन की आधारशिला बनीं।

पहली थी — दिनचर्या के माध्यम से अनुशासन। शाखा के अभ्यास, परेड और शारीरिक प्रशिक्षण ने लंबे समय तक काम करने की और उच्च शारीरिक सहनशक्ति की क्षमता को जन्म दिया — एक ऐसी क्षमता जो आज भी दिखाई देती है, जब वे उत्तर ब्लॉक में चौदह-चौदह घंटे के कार्यदिवस बिताते हैं।

दूसरी थी — साथियों और वरिष्ठ मार्गदर्शकों का नेटवर्क। संघ की प्रचारकों और स्थानीय संघचालकों की सीढ़ी, जो ऊपर की ओर बढ़ने के मार्गदर्शक भी बनती थी।

तीसरी थी — वैचारिक संघर्ष के प्रति सहिष्णुता। वाद-विवाद, स्वयंसेवकों की लामबंदी और अग्रिम-पंक्ति की सक्रियता की वह संस्कृति, जिसने उन्हें चुनावी अभियानों के लिए तैयार किया।

संघ में एक वर्ष की दीक्षा के पश्चात, 1983 में शाह अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) — संघ की छात्र इकाई — में शामिल हुए। एबीवीपी के कार्य ने उन्हें राजनीतिक संगठन की दिनचर्या से पहला परिचय कराया: रैलियाँ, आंदोलन, अध्ययन-मंडल, और छात्रावास-स्तर पर वामपंथी-प्रभुत्व वाले छात्रसंघों को चुनौती देना। जब तक उन्होंने अपनी जैव रसायन की उपाधि पूरी की, तब तक वे वस्तुतः दो समानांतर पाठ्यक्रम पूरे कर चुके थे — एक विज्ञान का, और एक संघ के संगठन-सिद्धांत का।

“सुख-सुविधाओं का त्याग”: एक जीवन-दर्शन की नींव

शाह का यह कथन — कि स्वयंसेवक होने का अर्थ है “राष्ट्र-निर्माण के लिए समस्त सुख-सुविधाओं का त्याग” — केवल एक नारा नहीं, बल्कि संघ की संपूर्ण जीवन-दृष्टि का सार है। संघ की परंपरा में प्रचारक वह व्यक्ति होता है जो विवाह, धन और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का त्याग कर पूर्णकालिक रूप से संगठन को समर्पित हो जाता है। यद्यपि शाह स्वयं प्रचारक नहीं बने और उन्होंने गृहस्थ-जीवन चुना, परंतु त्याग और समर्पण का यह आदर्श उनके भीतर गहरे उतर गया।

इसी आदर्श की प्रतिध्वनि आगे चलकर उनके उस प्रसिद्ध कथन में सुनाई देती है, जो उन्होंने अपनी पत्नी सोनल की उपस्थिति में एक सार्वजनिक मंच से कहा: “मैं परिवार के लिए समय नहीं निकाल सकता; परिवार मेरे लिए समय चुनकर निकाल लेता है।” यह वाक्य कठोर प्रतीत हो सकता है, परंतु इसमें वही संघ-प्रशिक्षित दर्शन निहित है — कि व्यक्तिगत सुख राष्ट्र-कार्य के समक्ष गौण है। एक 16 वर्षीय किशोर ने शाखा के मैदान में जो आदर्श आत्मसात किया, वह छह दशक बाद भी उसकी जीवन-शैली का मार्गदर्शक बना रहा।

1982: एक चार-दशक लंबी साझेदारी का जन्म

शाह के जीवन का सबसे निर्णायक आरंभिक संबंध 1982 में आकार लेने लगा, जब 17–18 वर्ष की आयु में, अहमदाबाद के स्थानीय आरएसएस मंडलों के माध्यम से, उनकी भेंट नरेंद्र मोदी से हुई। उस समय मोदी एक आरएसएस प्रचारक थे — संघ का पूर्णकालिक प्रसारक — जो गुजरात के तीन ज़िलों के प्रभारी थे।

इस संबंध में शक्ति-संतुलन आरंभ से ही स्पष्ट था। मोदी आयु में बड़े, अधिक वरिष्ठ, और एक भ्रमणशील प्रचारक थे — संघ की भाषा में, एक प्रकार के "अंतर्निहित संगठनात्मक मिशनरी"। शाह एक युवा स्वयंसेवक थे, अभी-अभी दीक्षित। जो लोग इस संबंध को बनते हुए देख रहे थे, उनके अनुसार यह एक गुरु और शिष्य का बंधन था, जिसमें मोदी ने शाह की संगठनात्मक प्रतिभा में विशेष रुचि ली।

आगामी वर्षों में दोनों गुजरात की भाजपा और संघ संरचनाओं में साथ-साथ काम करते रहे। एक प्रसिद्ध टिप्पणी के अनुसार, मोदी ने एक स्वच्छ छवि बनाए रखी क्योंकि वे "कठिन और श्रमसाध्य कार्य" शाह को सौंप देते थे, जिन्हें शाह असाधारण दक्षता और दृढ़ता से पूरा करते थे। यह श्रम-विभाजन ही आगे चलकर भाजपा का संचालन-तंत्र बना — मोदी सार्वजनिक चेहरा, शाह संगठनात्मक मस्तिष्क।

इस साझेदारी का वर्णन करने के लिए दो रूपक बार-बार प्रयोग में आते हैं। पहला भाजपा की अपनी राजनीतिक शब्दावली से आता है: मोदी सार्वजनिक चेहरा, और शाह वह "रोड रोलर जो उनके मार्ग की बाधाओं को समतल कर देता है।" दूसरा, जो अधिक आत्मीय है, "राम और लक्ष्मण" का — मोदी चेहरा, शाह कर्म, श्लोक-शैली की पूरकता में बंधे हुए। दोनों रूपक उपयोगी ढंग से इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि शाह की अनिवार्यता पर — उनके आलोचक भी — संदेह नहीं करते।

एक गुरु-शिष्य परंपरा का स्वरूप

1982 की इस भेंट के समय आयु और अनुभव का अंतर निर्णायक था। मोदी, जो शाह से लगभग चौदह वर्ष बड़े थे, एक भ्रमणशील प्रचारक के रूप में पहले ही संगठन

की कठिन साधना से गुज़र चुके थे — गाँव-गाँव की यात्रा, कार्यकर्ताओं का निर्माण, और वैचारिक प्रसार। शाह उस अनुभव की छाया में एक उत्सुक शिष्य की भाँति प्रवेश कर रहे थे। परंतु यह कोई एकतरफ़ा संबंध नहीं था; मोदी ने शाह में जो विशेष गुण पहचाना, वह था संगठन को संख्याओं और संरचना में ढालने की उनकी असाधारण प्रतिभा।

भारतीय परंपरा में गुरु-शिष्य संबंध केवल ज्ञान-हस्तांतरण नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण का संबंध है। मोदी ने शाह को न केवल संगठन के व्यावहारिक कौशल सिखाए, बल्कि एक राजनीतिक दृष्टि भी दी — कि सत्ता अपने आप में लक्ष्य नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण का साधन है। और शाह ने, अपने बनिया-वैष्णव संस्कारों और संघ की दीक्षा के साथ, इस दृष्टि को एक मापनीय, क्रियान्वयन-योग्य पद्धति में ढाल दिया। यह संबंध इतना दृढ़ निकला कि अगले चार दशकों तक — गुजरात की भाजपा से लेकर नई दिल्ली की राष्ट्रीय सत्ता तक — यह कभी टूटा नहीं, बल्कि हर कसौटी पर और मज़बूत होता गया।

शाखा का जीवन: अनुशासन की प्रयोगशाला

संघ की शाखा को समझे बिना अमित शाह के अनुशासन को समझना अधूरा रहेगा। शाखा — प्रतिदिन किसी मैदान या खुले स्थान में लगने वाली वह एक घंटे की सभा — संघ की आधारभूमि है। यहाँ सुबह या शाम स्वयंसेवक एकत्र होते हैं, ध्वज-वंदना होती है, शारीरिक अभ्यास और खेल होते हैं, बौद्धिक चर्चा होती है, और अंत में प्रार्थना होती है। यह दिनचर्या वर्ष-दर-वर्ष, बिना नागा, चलती रहती है।

एक किशोर के लिए इस दैनिक अनुशासन का प्रभाव गहरा होता है। यह उसे समय की पाबंदी, सामूहिक कार्य, और एक बड़े उद्देश्य के प्रति निष्ठा सिखाता है। जब हम आज अमित शाह को चौदह-चौदह घंटे के कार्यदिवस बिताते, छुट्टियों में भी कार्य करते, और एक साथ दर्जनों समितियों का प्रबंधन करते देखते हैं, तो यह उसी शाखा-अनुशासन की परिणति है जो मनसा और अहमदाबाद के मैदानों में रोपा गया था। एक कनिष्ठ मंत्री ने एक बार टिप्पणी की थी कि शाह अकेले “अस्सी समितियाँ” सँभाल सकते हैं, “आठ तो दूर की बात है” — यह क्षमता उसी आरंभिक प्रशिक्षण से उपजी थी।

शाखा एक और महत्वपूर्ण चीज़ सिखाती है — नेतृत्व की पदानुक्रमिक संरचना। मुख्य शिक्षक, गटनायक, संघचालक — यह सीढ़ी एक युवा स्वयंसेवक को संगठन के भीतर ऊपर बढ़ने का मार्ग और मार्गदर्शक, दोनों प्रदान करती है। शाह ने इस संगठनात्मक व्याकरण को इतनी गहराई से आत्मसात किया कि आगे चलकर उन्होंने भाजपा को ठीक इसी तर्ज़ पर पुनर्गठित किया — स्पष्ट पदानुक्रम, प्रशिक्षित कैडर, और हर स्तर पर जवाबदेही।

यहाँ एक गहरा सूत्र दिखाई देता है। संघ की शाखा एक ऐसी व्यवस्था है जहाँ व्यक्ति गौण और संगठन प्रमुख होता है; जहाँ कोई एक नायक नहीं, बल्कि अनगिनत समर्पित स्वयंसेवक संगठन की रीढ़ होते हैं। यही दर्शन शाह के संगठन-निर्माण के केंद्र में रहा — कि एक राजनीतिक दल की वास्तविक शक्ति उसके शीर्ष-नेतृत्व में नहीं, बल्कि उसके अंतिम पंक्ति के कार्यकर्ता में निहित होती है। भाजपा को विश्व का सबसे बड़ा राजनीतिक दल बनाने की उनकी आकांक्षा का बीज इसी शाखा-दर्शन में था।

एबीवीपी: पहली राजनीतिक रणभूमि

1983 में एबीवीपी में प्रवेश शाह की पहली प्रत्यक्ष राजनीतिक रणभूमि थी। उस काल के विश्वविद्यालय और छात्रावास प्रायः वामपंथी छात्र-संगठनों के गढ़ थे, और एबीवीपी का कार्य इन गढ़ों में राष्ट्रवादी विचारधारा का विस्तार करना था। यह कोई सहज कार्य नहीं था — इसमें वैचारिक वाद-विवाद, संगठनात्मक निर्माण, और प्रायः प्रत्यक्ष टकराव शामिल था।

यहीं शाह ने वे कौशल अर्जित किए जो आगे चलकर उनकी पहचान बने: छात्रों को मुद्दों के इर्द-गिर्द लामबंद करना, आंदोलनों का संगठन, और विरोधी विचारधारा के सामने अपनी बात पर डटे रहना। एबीवीपी की यह शिक्षुता वस्तुतः उस दृढ़ता के दर्शन का पहला पाठ थी जिसके लिए वे आगे चलकर प्रसिद्ध हुए — कि वैचारिक संघर्ष से पीछे नहीं हटना, बल्कि उसका सामना करना।

एबीवीपी का कार्य शाह के लिए एक प्रकार की प्रयोगशाला भी था, जहाँ उन्होंने पहली बार यह सीखा कि विचार और संगठन एक-दूसरे के पूरक होते हैं। एक अच्छा विचार तब तक प्रभावी नहीं होता जब तक उसके पीछे एक सुसंगठित कार्यकर्ता-

समूह न खड़ा हो; और एक संगठन तब तक टिकाऊ नहीं होता जब तक उसके पीछे एक स्पष्ट विचार न हो। यह अंतर्दृष्टि — विचार और संगठन का अविभाज्य संबंध — शाह की समूची राजनीतिक यात्रा का मार्गदर्शक सूत्र बनी। जब वे आगे चलकर एबीवीपी की उस दीक्षा से निकलकर भाजपा के संगठन में प्रवेश करेंगे, तो वे विचार और संगठन को एक साथ साधने की यही कला अपने साथ ले जाएँगे।

एक साझेदारी की गहराई

1982 की मोदी-शाह भेंट पर थोड़ा और रुकना आवश्यक है, क्योंकि यह केवल दो व्यक्तियों की भेंट नहीं थी — यह दो पूरक प्रतिभाओं का संगम था। मोदी एक करिश्माई वक्ता, एक जन-नेता, एक विचारक थे; शाह एक संगठनकर्ता, एक रणनीतिकार, एक क्रियान्वयक थे। एक का बल जनता के हृदय तक पहुँचने में था; दूसरे का बल उस पहुँच को संगठित, मापनीय और दोहराई जा सकने वाली शक्ति में बदलने में।

यह पूरकता ही इस साझेदारी की दीर्घायु का रहस्य है। चार दशकों तक — गुजरात की भाजपा से लेकर राष्ट्रीय सत्ता तक — यह जोड़ी एक साथ चली, और हर चरण पर इसका श्रम-विभाजन और स्पष्ट होता गया। मोदी ने दृष्टि दी, शाह ने संरचना; मोदी ने आह्वान किया, शाह ने संगठन। और जब 2019 में अनुच्छेद 370 का निरसन हुआ, तो यह उसी चार-दशक पुरानी साझेदारी की परिणति थी — एक की दृष्टि, दूसरे का क्रियान्वयन।

यहाँ एक ऐतिहासिक समानांतर अनायास ही उभर आता है, जिसकी विस्तृत चर्चा आगामी अध्याय करेंगे। जैसे सरदार पटेल और वी. पी. मेनन की जोड़ी ने रियासतों के एकीकरण को संभव बनाया था — एक राजनीतिक अधिकार और दृढ़ता का स्रोत, दूसरा प्रशासनिक विवरण और क्रियान्वयन का — वैसे ही मोदी-शाह की जोड़ी ने आधुनिक भारत के एकीकरण-कार्यों को संभव बनाया। इतिहास में दृष्टि और क्रियान्वयन का यह श्रम-विभाजन ही महान राष्ट्र-निर्माण की पहचान रहा है, और यह संयोग नहीं कि भारत के दो सबसे बड़े एकीकरण-प्रयासों के पीछे ठीक ऐसी ही पूरक जोड़ियाँ खड़ी थीं।

संघ-दृष्टि का राष्ट्र-निर्माण से संबंध

यह समझना महत्वपूर्ण है कि संघ की पाठशाला ने अमित शाह को केवल संगठनात्मक कौशल ही नहीं दिया; उसने उन्हें एक विश्व-दृष्टि भी दी जिसके केंद्र में राष्ट्र था। संघ की शब्दावली में "राष्ट्र-निर्माण" कोई अमूर्त नारा नहीं, बल्कि एक दैनिक साधना है — व्यक्तिगत सुख के त्याग और सामूहिक हित के प्रति समर्पण की साधना। यही दृष्टि आगे चलकर शाह के उन निर्णयों में प्रतिध्वनित हुई जिन्हें इस पुस्तक के आगामी अध्याय विस्तार से देखेंगे।

जब शाह आगे चलकर अनुच्छेद 370 को "राष्ट्रीय एकीकरण" के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं, या तीन तलाक के उन्मूलन को "तुष्टिकरण नहीं, विकास" के दर्शन से जोड़ते हैं, तो वे उसी संघ-प्रशिक्षित ढाँचे से बोल रहे होते हैं जिसमें राष्ट्र की दीर्घकालिक एकता सर्वोपरि है। यह कोई संयोग नहीं कि शाह स्वयं को "गौरवान्वित स्वयंसेवक" कहते हैं और संघ को "राष्ट्र-निर्माण" का स्रोत बताते हैं।

संघ की इस विश्व-दृष्टि का एक केंद्रीय तत्व था — दीर्घकालिक दृष्टि। संघ कभी तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए काम नहीं करता; वह पीढ़ियों के पैमाने पर सोचता है, धीरे-धीरे कार्यकर्ता गढ़ता है, और समाज में अपने विचार की जड़ें जमाता है। यह "लंबी पारी" का दर्शन शाह के रक्त में पहले से ही था — बनिया के धैर्य के रूप में — और संघ ने उसे एक वैचारिक आधार और एक राष्ट्रीय उद्देश्य प्रदान किया। आगे चलकर जब शाह राजनीति में प्रवेश के बाद पंद्रह वर्षों तक कोई चुनाव नहीं लड़ेंगे और केवल संगठन-निर्माण में जुटे रहेंगे, तो यह उसी संघ-दीक्षित दीर्घकालिक दृष्टि की अभिव्यक्ति होगी।

विचारधारा और व्यवहार का संगम

संघ की पाठशाला ने अमित शाह को जो सबसे मूल्यवान वस्तु दी, वह थी विचारधारा और व्यावहारिक संगठन का अविभाज्य संगम। अनेक विचारधारा-प्रेरित आंदोलन इसलिए विफल हो जाते हैं क्योंकि वे केवल आदर्शों पर टिके रहते हैं, ज़मीनी संगठन की उपेक्षा करते हुए; और अनेक संगठन इसलिए दिशाहीन हो जाते हैं क्योंकि उनके पास कोई स्पष्ट वैचारिक आधार नहीं होता। संघ ने इन दोनों को एक साथ साधने की

कला सिखाई — एक ओर राष्ट्र-निर्माण का स्पष्ट वैचारिक लक्ष्य, और दूसरी ओर शाखा-स्तर का सूक्ष्म, अनुशासित संगठन।

यह संगम शाह की समूची राजनीतिक यात्रा का मार्गदर्शक सूत्र बना। जब वे आगे चलकर भाजपा का संगठन गढ़ेंगे, तो वे केवल एक चुनावी मशीन नहीं, बल्कि एक वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध कैडर-आधारित संगठन का निर्माण करेंगे। और जब वे राष्ट्र-निर्माण के बड़े निर्णयों को क्रियान्वित करेंगे, तो उनके पीछे केवल राजनीतिक गणना नहीं, बल्कि एक स्पष्ट वैचारिक दृष्टि भी होगी। यही संगम — आदर्श और संगठन का, विचार और क्रियान्वयन का — वह विशिष्ट उपहार था जो संघ की शाखा ने इस किशोर को दिया।

शाह की दिनचर्या में शाखा की निरंतर छाप

यह उल्लेखनीय है कि संघ की शाखा-दीक्षा का प्रभाव शाह के जीवन में किसी आरंभिक चरण तक सीमित नहीं रहा; वह उनकी समूची दिनचर्या में आजीवन प्रतिध्वनित होता रहा। शारीरिक अनुशासन, समय की पाबंदी, और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता — ये सब शाखा के मूल्य थे, जो आगे चलकर भी उनके जीवन का अंग बने रहे। यह विशेष रूप से तब प्रकट हुआ जब कोविड महामारी के पश्चात उन्होंने प्रतिदिन तीन घंटे प्राणायाम और व्यायाम के माध्यम से अपना भार लगभग 135 किलोग्राम से घटाकर 85 किलोग्राम तक ला दिया — एक उल्लेखनीय आत्म-अनुशासन का प्रदर्शन, जिसमें उन्होंने युवाओं को भी प्रतिदिन व्यायाम करने और पर्याप्त नींद लेने की सलाह दी।

यह आत्म-अनुशासन कोई आकस्मिक गुण नहीं था; यह उसी शाखा-संस्कार की निरंतरता थी जो 16 वर्ष की आयु में रोपा गया था। शाखा सिखाती है कि शरीर और मन दोनों को साधना राष्ट्र-कार्य की पूर्व-शर्त है — कि एक स्वस्थ, अनुशासित व्यक्ति ही दीर्घकालिक राष्ट्र-सेवा कर सकता है। शाह ने इस पाठ को आजीवन निभाया, और यही कारण है कि छह दशक की आयु में भी वे उत्तर ब्लॉक में चौदह-चौदह घंटे के कार्यदिवस बिता सकते थे।

बीज और वृक्ष

1980 के दशक के आरंभ का यह काल — संघ में प्रवेश, एबीवीपी की सक्रियता, और मोदी से भेंट — अमित शाह के जीवन का वह उपजाऊ काल था जिसमें भविष्य के बीज पड़े। एक ओर अनुशासन और संगठन की संघ-दीक्षा; दूसरी ओर एक ऐसे वरिष्ठ साझेदार के साथ चार-दशक लंबी शिक्षुता जिसकी महत्वाकांक्षाएँ शाह के संगठनात्मक विस्तार के साथ पूर्णतः मेल खाती थीं।

इन बीजों से जो वृक्ष उगा, उसकी पहली बड़ी शाखा सहकारिता और संगठन के क्षेत्र में फूटी। एक 36 वर्षीय युवक जो किसी ज़िला सहकारी बैंक का सबसे युवा अध्यक्ष बना — और उस बैंक को गाँव-गाँव में अपने नाम से पहचान दिलाई — वही व्यक्ति आगे चलकर भारत के चुनावी मानचित्र को एक प्रयोगशाला की तरह पढ़ने वाला था।

उस कथा की ओर हम अगले अध्याय में बढ़ेंगे।

अध्याय 3

सहकारिता से संगठन तक: रणनीतिकार का उदय

अपनी स्नातक उपाधि के पश्चात अमित शाह ने एक ऐसा मार्ग चुना जो शैक्षणिक जैव रसायन से बहुत दूर था — उन्होंने व्यवसाय में छलाँग लगाई। आरंभ में उन्होंने शेयर बाज़ार में हाथ आज़माया — यह आंशिक रूप से पिता से विरासत में मिला कौशल था, जो पीवीसी पाइप इकाई चलाते थे और अहमदाबाद स्टॉक एक्सचेंज के अध्यक्ष थे। उन आरंभिक वर्षों में उन्हें एक "स्टॉक ब्रोकर" के रूप में वर्णित किया गया, जो साथ-साथ परिवार के पाइप-निर्माण व्यवसाय में भी सक्रिय थे।

उनके समकालीनों की स्मृतियाँ इस युवक के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं। एक परिचित ने उन्हें इस आयु में ही "एक असाधारण रूप से परिश्रमी व्यक्ति, राजनीतिक रणनीति-निर्माण की उल्लेखनीय क्षमता वाला" बताया; एक अन्य ने उन्हें "अत्यंत परिश्रमी और एकाग्र" कहा। ये विशेषण आकस्मिक नहीं हैं — परिश्रम और एकाग्रता वे दो धागे हैं जो शाह के समूचे जीवन-वस्त्र में बुने हुए हैं।

शेयर बाज़ार का प्रशिक्षण: संख्याओं और जोख़िम का व्याकरण

स्टॉक ब्रोकर के रूप में शाह के आरंभिक वर्ष उनके भावी राजनीतिक जीवन की एक मूक प्रयोगशाला थे। शेयर बाज़ार एक ऐसा क्षेत्र है जो दो विशिष्ट कौशल माँगता है — जोख़िम का सटीक आकलन, और भीड़ के मनोविज्ञान को पढ़ने की क्षमता। एक सफल ब्रोकर वह होता है जो भावना के बजाय आँकड़ों पर भरोसा करता है, जो अल्पकालिक उतार-चढ़ाव में अविचल रहता है, और जो दीर्घकालिक प्रवृत्तियों को पहचानने की दृष्टि रखता है।

ये ठीक वे गुण थे जो आगे चलकर शाह की राजनीतिक शैली की पहचान बने। जब वे एक चुनावी मानचित्र को देखते थे, तो वे उसे एक सट्टेबाज़ की सूक्ष्मता से पढ़ते थे — कहाँ जोख़िम है, कहाँ अवसर, और कहाँ धैर्य की आवश्यकता है। पिता

के स्टॉक एक्सचेंज की दुनिया में जो पाठ आरंभ हुआ था, वह पुत्र के व्यावसायिक जीवन में परिपक्व हुआ, और अंततः राजनीति के मंच पर अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ।

"अमित शाह का बैंक"

परंतु शाह के लिए सबसे गहरी प्रशिक्षण-भूमि सहकारी बैंकिंग का क्षेत्र सिद्ध हुई। वे अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक (एडीसीबी) के अध्यक्ष पद तक पहुँचे — ग्रामीण गुजरात में जिसे सीधे-सादे "एडीसी" के नाम से जाना जाता था। आधिकारिक जीवनी उन्हें 36 वर्ष की आयु में इस बैंक का सबसे युवा अध्यक्ष बताती है; उनका औपचारिक कार्यकाल 22 जनवरी 2000 से 22 दिसंबर 2002 तक रहा, यद्यपि उनका निर्वाचन 1999 में ही हो चुका था।

यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है: ग्रामीण गुजरात में लोग एडीसी को "अमित शाह का बैंक" कहने लगे थे। यह नाम-संयोजन का एक असाधारण स्तर था — एक ऐसी आत्मीयता जो आगे चलकर उनके द्वारा स्वयं ब्रांड-प्रबंधन की अग्रदूत बनी। एक राजनेता का नाम जब किसी संस्था के साथ इतनी गहराई से जुड़ जाए कि गाँव का सामान्य व्यक्ति उसे उसी नाम से पुकारे, तो यह संगठन और जनसंपर्क की एक दुर्लभ क्षमता का प्रमाण है।

एडीसीबी ने शाह को तीन निर्णायक उपकरण दिए। पहला — जन-स्तरीय वित्तीय विश्वास: हज़ारों छोटे किसानों, व्यापारियों और परिवारों को एक सहकारी संस्था के माध्यम से जमा और ऋण के लिए राज़ी करने की क्षमता। दूसरा — जाति, समुदाय और आर्थिक भूगोल पर वास्तविक आँकड़े: सहकारी का ग्राहक-आधार गुजरात के सामाजिक ताने-बाने का एक जीवंत मानचित्र था, जो आगे चलकर उनके बूथ-स्तरीय लक्ष्यीकरण में सीधे काम आया। तीसरा — राजनीति से परे एक सार्वजनिक पहचान: गाँव वाले एडीसी को उनके नाम से पुकारते थे, यह एक ब्रांड-निर्माण की कवायद थी जो आगे चलकर सहजता से उनके राजनीतिक कार्य में अनूदित हो गई।

इसके अतिरिक्त शाह ने गुजरात राज्य शतरंज संघ के अध्यक्ष, गुजरात राज्य वित्तीय निगम के अध्यक्ष, और गुजरात क्रिकेट संघ के उपाध्यक्ष (2009) तथा बाद

में अध्यक्ष (2014) के रूप में भी कार्य किया। शतरंज का संयोग यहाँ प्रतीकात्मक है — एक ऐसा खेल जो दूरदृष्टि, धैर्य और हर चाल के परिणाम की पूर्व-गणना की माँग करता है; ठीक वही गुण जो आगे चलकर उनकी राजनीतिक शैली की पहचान बने।

सहकारिता: ग्रामीण भारत का जीवंत मानचित्र

सहकारी बैंकिंग के क्षेत्र को समझना अमित शाह की राजनीतिक प्रतिभा को समझने की कुंजी है। गुजरात जैसे राज्य में सहकारी संस्थाएँ केवल वित्तीय संस्थाएँ नहीं हैं; वे ग्रामीण समाज की धमनियाँ हैं। दूध की सहकारी समितियों से लेकर ऋण-समितियों तक, यह जाल गाँव-गाँव में फैला हुआ है और लाखों लोगों के दैनिक जीवन को छूता है। जो व्यक्ति इस जाल के केंद्र में बैठता है, वह वस्तुतः ग्रामीण समाज की नब्ज़ पर हाथ रखता है।

अमित शाह ने एडीसीबी की अध्यक्षता के माध्यम से इस नब्ज़ को पढ़ना सीखा। उन्हें यह प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ कि कौन-सा समुदाय कहाँ बसा है, किसकी आर्थिक स्थिति कैसी है, कौन-से नेटवर्क प्रभावी हैं, और जन-विश्वास कैसे बनता और टूटता है। यह आँकड़ा कोई पुस्तकीय आँकड़ा नहीं था; यह ज़मीन से उठा हुआ, जीवंत आँकड़ा था। आगे चलकर जब शाह चुनावी रणनीति बनाएँगे और हर बूथ, हर समुदाय, हर पन्ने का सूक्ष्म आकलन करेंगे, तो वे वस्तुतः उसी सहकारी-अनुभव में सीखे गए पाठ को बड़े पैमाने पर लागू कर रहे होंगे।

यहाँ एक गहरा सूत्र दिखाई देता है, जो सरदार पटेल की परंपरा से जुड़ता है। पटेल ने भी अपनी राजनीतिक शक्ति ज़मीन से, किसानों के बीच से अर्जित की थी — बारडोली और खेड़ा के किसानों को संगठित करके। पटेल की वैधता ऊपर से थोपी गई नहीं, बल्कि नीचे से अर्जित की गई थी। ठीक वैसे ही, शाह की संगठनात्मक शक्ति भी सहकारी समितियों और बूथ-स्तरीय कार्यकर्ताओं के बीच से, नीचे से ऊपर की ओर अर्जित की गई थी। दोनों की राजनीति का आधार जन-संपर्क की वह सूक्ष्म, ज़मीनी समझ थी जो केवल लंबे और धैर्यपूर्ण कार्य से ही आती है।

गुजरात राज्य उर्वरक निगम: प्रबंधन की पहली झलक

1995 में, गुजरात राज्य उर्वरक निगम (जीएसएफसी) के अध्यक्ष के रूप में, शाह ने प्रबंधन-कौशल की एक आरंभिक झलक दी। उनके अनुसार, इस अवधि में उन्होंने निगम के शुद्ध लाभ में उल्लेखनीय वृद्धि की, इसका आईपीओ लाए, और पट्टा-क्रय वित्तपोषण की व्यवस्था आरंभ की। यह उनके बाद के प्रशासनिक कार्यकालों की एक छोटी किंतु शिक्षाप्रद पूर्वपीठिका थी — इस बात का प्रमाण कि वे केवल एक संगठनकर्ता ही नहीं, एक प्रबंधक भी थे जो संस्थाओं को परिणामोन्मुख बना सकते थे।

बूथ का गणित: एक संगठनकर्ता का जन्म

इन्हीं वर्षों में शाह की वह पहचान आकार ले रही थी जिसने आगे चलकर उन्हें "आधुनिक चाणक्य" बनाया। 1991 से 2009 तक उन्होंने लालकृष्ण आडवाणी (गांधीनगर) और अटल बिहारी वाजपेयी (गांधीनगर) के व्यक्तिगत चुनाव-प्रबंधक के रूप में कार्य किया। यह कोई साधारण ज़िम्मेदारी नहीं थी — देश के दो सबसे वरिष्ठ नेताओं के चुनाव-क्षेत्र का प्रबंधन एक ऐसी प्रयोगशाला थी जहाँ शाह ने मतदाता-सूची, बूथ-स्तरीय संगठन, और कार्यकर्ता-प्रबंधन की बारीकियों में महारत हासिल की।

शाह का संगठनात्मक दर्शन सरल किंतु क्रांतिकारी था: चुनाव रैलियों या भाषणों से नहीं, बल्कि बूथ-स्तर के अनुशासन से जीते जाते हैं। हर मतदाता तक पहुँचना, हर पन्ने (पन्ना) के मतदाताओं को नाम से जानना, और हर बूथ को एक स्थायी, सुसज्जित इकाई में बदलना — यही उनकी पद्धति का मूल था। यह दर्शन उनके सहकारी-बैंकिंग अनुभव से सीधे निकला था, जहाँ उन्होंने सीखा था कि जन-विश्वास एक-एक व्यक्ति से, एक-एक लेन-देन से बनता है।

"बूथ जीतो, चुनाव जीतो": एक पद्धति का परिपक्व रूप

शाह की चुनावी पद्धति की पूर्ण अभिव्यक्ति आगे चलकर उत्तर प्रदेश में दिखाई दी, परंतु उसके सिद्धांत इन्हीं आरंभिक वर्षों में आकार ले चुके थे। उनकी रणनीति बहु-

स्तरीय थी — सीट, क्लस्टर, ज़ोन और राज्य। एक राज्य के अस्सी लोकसभा क्षेत्रों को इक्कीस क्लस्टरों में, और इन्हें आठ ज़ोनों में बाँटा गया। प्रत्येक स्तर पर स्पष्ट जवाबदेही, स्पष्ट लक्ष्य, और स्पष्ट संगठन।

बूथ-स्तर पर यह गणित और भी सूक्ष्म था। प्रत्येक बूथ पर दस मतदाताओं को मतदान-केंद्र तक पहुँचाने के लिए एक वाहन की व्यवस्था, और एक लाख से अधिक बूथों का संगठन। दुर्गम "अंधेरे क्षेत्रों" के लिए एक विशेष अभियान-वीडियो, जीपीएस-युक्त वैनों का बेड़ा, और हज़ारों पूर्णकालिक स्वयंसेवक। रैलियों में उपस्थिति को पार करने के लिए एक केंद्रीय कॉल सेंटर तक स्थापित किया गया। और सबसे उल्लेखनीय — प्रत्येक गाँव के "दूसरे सबसे प्रभावशाली" नेता को संगठन से जोड़ना, अर्थात लगभग आठ हज़ार ग्रामीण द्वितीय-पंक्ति नेताओं का एक जाल।

इस सूक्ष्मता के पीछे शाह का अपना दर्शन था। उन्होंने कहा था कि "सटीक आकलन के लिए विवरणों का सत्यापन आवश्यक था," और यह भी कि उन्होंने "अपने अहं को एक ओर रखने" का निर्णय किया था। यह कथन उस वैज्ञानिक मनोवृत्ति को दर्शाता है जो जैव रसायन की प्रयोगशाला से उपजी थी — कि अंतिम परिणाम भावना से नहीं, बल्कि सूक्ष्म, सत्यापित आँकड़े से तय होता है। यही पद्धति आगे चलकर भाजपा को विश्व का सबसे बड़ा राजनीतिक दल बनाने का आधार बनी।

शतरंज, क्रिकेट और संस्थाओं का जाल

अमित शाह के संगठनात्मक उत्थान को समझने के लिए उन विविध संस्थाओं पर ध्यान देना आवश्यक है जिनका नेतृत्व उन्होंने किया। ये केवल पद नहीं थे; ये प्रभाव, नेटवर्क और संगठन-कौशल के विद्यालय थे।

गुजरात राज्य शतरंज संघ की अध्यक्षता एक प्रतीकात्मक संयोग है। शतरंज वह खेल है जो दूरदृष्टि, धैर्य और हर चाल के बहु-स्तरीय परिणामों की पूर्व-गणना की माँग करता है। एक शतरंज-खिलाड़ी केवल अगली चाल नहीं, बल्कि उसके बाद की दस चालों के बारे में सोचता है। यही मानसिकता शाह की राजनीतिक शैली की पहचान बनी — चाहे वह चुनावी रणनीति हो या अनुच्छेद 370 जैसे जटिल संवैधानिक क़दम का चरण-दर-चरण क्रियान्वयन।

गुजरात क्रिकेट संघ में उनकी भूमिका — पहले उपाध्यक्ष (2009), फिर अध्यक्ष (2014) — एक और महत्वपूर्ण मंच थी। क्रिकेट भारत में केवल एक खेल नहीं, बल्कि एक विशाल संगठनात्मक और सामाजिक तंत्र है। इस तंत्र का प्रबंधन शाह के लिए बड़े पैमाने पर संस्थागत संचालन का एक और अभ्यास था। यह उल्लेखनीय है कि इसी मंच ने आगे चलकर उनके पुत्र जय शाह के क्रिकेट-प्रशासन में उत्थान का मार्ग भी प्रशस्त किया, जो आगे चलकर अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट परिषद के अध्यक्ष बने — डालमिया और श्रीनिवासन के बाद यह पद सँभालने वाले तीसरे भारतीय।

जीएसएफसी: प्रबंधन का प्रमाण

गुजरात राज्य उर्वरक निगम (जीएसएफसी) में शाह का कार्यकाल उनके प्रबंधन-कौशल का एक ठोस प्रमाण था। एक सार्वजनिक उपक्रम को लाभ की ओर ले जाना, उसका आईपीओ लाना, और नई वित्तीय व्यवस्थाएँ आरंभ करना — यह दर्शाता है कि शाह केवल एक राजनीतिक संगठनकर्ता ही नहीं, बल्कि एक सक्षम प्रशासक भी थे। यह वही क्षमता थी जो आगे चलकर गृह मंत्रालय और सहकारिता मंत्रालय में संस्थागत सुधारों के रूप में प्रकट हुई।

इन सभी भूमिकाओं में एक समान सूत्र दिखाई देता है — संस्थाओं को व्यवस्थित करने, उन्हें परिणामोन्मुख बनाने, और उनके माध्यम से व्यापक प्रभाव अर्जित करने की क्षमता। यही सूत्र शाह की राष्ट्र-निर्माण की पद्धति का केंद्र बना: एक स्थिर संस्था को पहचानो, उसे सुदृढ़ करो, और उसे अगले लक्ष्य के मंच के रूप में उपयोग करो।

यहाँ पटेल की परंपरा का एक और सूत्र दिखाई देता है। पटेल के लिए राष्ट्र-निर्माण केवल भौगोलिक एकीकरण नहीं, बल्कि संस्थाओं का निर्माण भी था — उन्होंने अखिल भारतीय सेवाओं को भारत का "इस्पात का ढाँचा" कहा। ठीक वैसे ही, शाह के लिए राजनीतिक सफलता केवल चुनाव जीतना नहीं, बल्कि स्थायी संस्थाओं का निर्माण था — चाहे वह एक सहकारी बैंक हो, एक उर्वरक निगम हो, या आगे चलकर एक राष्ट्रीय फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय। दोनों के लिए, संस्था ही राष्ट्र-निर्माण की वास्तविक इकाई थी।

एक संगठनकर्ता का दर्शन: "हर युद्ध जीता जाना चाहिए"

इन सभी भूमिकाओं के माध्यम से अमित शाह में एक विशिष्ट संगठनकर्ता-दर्शन परिपक्व हो रहा था, जो उनके समकालीनों की उन स्मृतियों में झलकता है जिन्होंने उन्हें "राजनीतिक रणनीति-निर्माण की उल्लेखनीय क्षमता वाला" और "अत्यंत परिश्रमी और एकाग्र" बताया। यह दर्शन कुछ स्पष्ट सिद्धांतों पर टिका था। पहला सिद्धांत यह कि किसी भी चुनाव या अभियान को कभी हल्के में नहीं लेना — चाहे वह नगरपालिका का चुनाव हो या लोकसभा का, प्रत्येक को पूर्ण गंभीरता और संपूर्ण संगठन-शक्ति से लड़ना। दूसरा सिद्धांत यह कि संगठन का काम चुनाव के समय नहीं, बल्कि चुनाव के बीच के वर्षों में होता है — एक स्थायी, सक्रिय कैडर का निर्माण जो हर समय तैयार रहे।

तीसरा, और सबसे विशिष्ट सिद्धांत यह कि नेतृत्व का अर्थ है ज़मीनी वास्तविकता का सीधा सामना — किसी सहायक की रिपोर्ट पर निर्भर रहना नहीं, बल्कि स्वयं विवरणों का सत्यापन करना। शाह का यह कथन — कि उन्होंने "अपने अहं को एक ओर रखने" और स्वयं ज़मीनी आँकड़ों की पड़ताल करने का निर्णय किया — इस दर्शन का सार है। एक नेता जो स्वयं को इतना बड़ा न समझे कि वह बूथ-स्तर के विवरण में हाथ डालने से कतराए, वही नेता वास्तविक संगठन खड़ा कर सकता है। यह विनम्रता और सूक्ष्मता का वह दुर्लभ संयोजन था जिसने शाह को अन्य राजनेताओं से अलग किया।

यह संगठन-दर्शन वस्तुतः पटेल की बारडोली-परंपरा का ही आधुनिक रूप था। जैसे पटेल ने बारडोली में तालुका को इकाइयों में बाँटकर, हर गाँव में स्वयंसेवक नियुक्त करके और अनुशासन को सर्वोपरि रखकर एक अजेय आंदोलन खड़ा किया था, वैसे ही शाह ने भारत के चुनावी मानचित्र को बूथ, पन्ने और कार्यकर्ता की इकाइयों में बाँटकर एक अजेय संगठन खड़ा किया। दोनों के लिए, संगठन कोई सहायक उपकरण नहीं, बल्कि शक्ति का प्राथमिक स्रोत था।

एक "लंबी पारी" की रणनीति

शाह के विषय में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राजनीति में प्रवेश के पश्चात उन्होंने पंद्रह से अधिक वर्षों तक कोई चुनाव नहीं लड़ा। उनका कहना था कि पहले "संगठन

का निर्माण" आवश्यक है। यह एक ऐसी व्यवस्था में असामान्य था जहाँ अधिकांश राजनेता आरंभिक अवसर से ही अपने व्यक्तिगत चुनावी पदचिह्न को अधिकतम करने में जुट जाते हैं। शाह की यह "लंबी पारी" कोई नारा नहीं, बल्कि एक पद्धति थी — कि संस्थागत गहराई, क्षणिक प्रसिद्धि को परास्त कर देती है।

इस निर्णय की गहराई को समझना आवश्यक है। एक ऐसे युग में जहाँ राजनीति तात्कालिक दृश्यता और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से संचालित होती है, एक युवा नेता का पंद्रह वर्षों तक चुनावी मंच से दूर रहकर केवल संगठन के मूक निर्माण में जुटे रहना एक असाधारण आत्मानुशासन का परिचायक है। यह वही बनिया-धैर्य था, वही संघ-प्रशिक्षित दीर्घकालिक दृष्टि, जो अल्पकालिक लाभ के स्थान पर स्थायी संरचना को प्राथमिकता देती थी। शाह जानते थे कि एक मज़बूत संगठन के बिना अर्जित सत्ता क्षणभंगुर होती है, जबकि एक मज़बूत संगठन के साथ अर्जित सत्ता दीर्घकालिक और अपरिवर्तनीय।

यही धैर्य, यही दीर्घकालिक दृष्टि, आगे चलकर उनके राष्ट्र-निर्माण के दर्शन की आधारशिला बनी। जो व्यक्ति पंद्रह वर्ष तक चुनाव न लड़कर संगठन गढ़ता रहे, वही व्यक्ति सात दशक पुरानी संवैधानिक विसंगतियों को धैर्यपूर्वक सुलझाने का संकल्प भी रख सकता था।

इस प्रकार, मनसा के व्यापारी-वंश, संघ के अनुशासन, सहकारी बैंकिंग के जन-संपर्क, और बूथ-स्तरीय गणित — इन चारों धाराओं ने मिलकर उस अमित शाह को गढ़ा जो आगे चलकर भारतीय राजनीति का सबसे सुसंगठित रणनीतिकार बना। परंतु इससे पहले कि हम उनके राष्ट्रीय उत्थान की कथा में प्रवेश करें, हमें उस व्यक्ति को समझना होगा जिसकी परंपरा का वे उत्तराधिकारी कहे जाते हैं — सरदार वल्लभभाई पटेल।

अध्याय 4

सरदार पटेल: एक राष्ट्र का शिल्पकार

यदि अमित शाह की कथा को समझना है, तो सरदार वल्लभभाई पटेल की कथा को समझना अनिवार्य है। क्योंकि यह पुस्तक जिस केंद्रीय समानांतर पर खड़ी है, उसका एक छोर पटेल हैं — आधुनिक भारत के वह शिल्पकार जिन्होंने एक बिखरे हुए उपमहाद्वीप को एक राष्ट्र में पिरोया।

बारडोली की भट्टी: “सरदार” का जन्म

वल्लभभाई झावेरभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर 1875 को नडियाद, बम्बई प्रेसीडेंसी में, एक लेवा पाटीदार भू-स्वामी परिवार में हुआ। उन्होंने इंग्लैंड के मिडल टेम्पल से बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त की और अहमदाबाद तथा बम्बई उच्च न्यायालय में एक अत्यंत सफल वकालत खड़ी की — 1920 के दशक के आरंभ तक वे गुजरात के सर्वाधिक आय अर्जित करने वाले बैरिस्टरों में से एक थे।

परंतु इतिहास उन्हें एक वकील के रूप में नहीं, एक नेता के रूप में याद रखता है। 1917 में गांधी के स्वराज-आंदोलन से जुड़ने के पश्चात, 1918 के खेड़ा सत्याग्रह में उन्होंने किसानों को संगठित किया। और फिर आया वह क्षण जिसने उन्हें “सरदार” बना दिया — **बारडोली सत्याग्रह, 1928**।

जब बम्बई प्रेसीडेंसी ने एक ऐसे वर्ष में, जब मानसून विफल रहा था, भू-राजस्व में 22% की वृद्धि की घोषणा की, तो बारडोली के ग्रामीण पटेल की ओर मुड़े। पटेल ने तीन निर्णायक सिद्धांत रखे जो आगे चलकर उनके समूचे जीवन की पहचान बने: कि ब्रिटिश अल्टीमेटम को सीधे अस्वीकार किया जाए (समझौता नहीं), कि हस्ताक्षर खुली अवज्ञा में एकत्र किए जाएँ, और कि आंदोलन से कभी हिंसा न फूटे। प्रशासन का आत्मसमर्पण अगस्त 1928 तक पूर्ण हो गया।

सम्मान का यह उपनाम आंदोलन की सफलता के पश्चात आया, उसके साथ नहीं: ब्रिटिश सरकार के पीछे हटने के बाद, बारडोली के गाँवों की स्त्रियों ने पटेल को

औपचारिक रूप से **"सरदार"** की उपाधि दी — अर्थात् प्रमुख, नेता। यह एक ब्रिटिश या कांग्रेस-प्रदत्त सम्मान नहीं, बल्कि उनके अपने गाँव में, उन्हीं लाभार्थियों द्वारा गढ़ा गया एक स्वदेशी सम्मान था जिनका उन्होंने नेतृत्व किया था। यह तथ्य पटेल की वैधता के स्वरूप को रेखांकित करता है — वह नीचे से ऊपर की ओर अर्जित की गई वैधता थी, उपाधि-प्रदत्त नहीं।

यहाँ एक मार्मिक समानांतर उभरता है: जैसे पटेल की वैधता बूथ-स्तर के गाँव-स्तर के समर्थन से बनी, वैसे ही अमित शाह की संगठनात्मक शक्ति भी बूथ-स्तरीय कार्यकर्ताओं को संसदीय बहुमत में बदलने से बनी। दोनों की राजनीतिक नींव ऊपर से थोपी गई नहीं, बल्कि नीचे से अर्जित की गई थी।

बारडोली का गहरा पाठ: संगठन ही शक्ति है

बारडोली सत्याग्रह केवल एक राजस्व-विरोधी आंदोलन नहीं था; यह संगठन-कौशल का एक उत्कृष्ट उदाहरण था, और इसी कारण यह पटेल-शाह समानांतर के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। पटेल ने बारडोली में जो किया, वह केवल विरोध नहीं था — वह एक सुसंगठित, अनुशासित, और रणनीतिक अभियान था। उन्होंने तालुका को इकाइयों में बाँटा, प्रत्येक गाँव में स्वयंसेवक नियुक्त किए, सूचना-प्रसार का एक तंत्र बनाया, और किसानों को यह विश्वास दिलाया कि एकजुट रहकर वे अजेय हैं।

यह संगठनात्मक सूक्ष्मता ही पटेल को अन्य नेताओं से अलग करती थी। जहाँ अनेक नेता आदर्शों और भाषणों पर निर्भर रहते थे, वहीं पटेल जानते थे कि आदर्श तब तक अप्रभावी रहते हैं जब तक उनके पीछे एक अनुशासित संगठन न खड़ा हो। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि आंदोलन में कहीं भी हिंसा न फूटे, क्योंकि एक भी हिंसक घटना समूचे अभियान की नैतिक शक्ति को नष्ट कर सकती थी। यह संगठन-कुशलता, यह अनुशासन-आग्रह, और यह रणनीतिक सूक्ष्मता — ये ठीक वही गुण हैं जो आगे चलकर अमित शाह की संगठनात्मक शैली की पहचान बनेंगे। दोनों ही पुरुष यह समझते थे कि राजनीति का असली खेल संगठन के स्तर पर खेला जाता है, मंच पर नहीं।

उप प्रधानमंत्री और प्रथम गृह मंत्री

15 अगस्त 1947 को, स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रिमंडल में, सरदार पटेल ने एक साथ तीन भूमिकाएँ सँभालीं — **उप प्रधानमंत्री, गृह मंत्री, और रियासत मंत्री**। यह अधिकार का एक ऐसा संकेंद्रण था जिसके निकट कोई बाद का गृह मंत्री नहीं पहुँच सका। उन्हें रियासतों के एकीकरण, आंतरिक सुरक्षा, गुप्तचर तंत्र, और भावी अखिल भारतीय सेवाओं — सबका पर्यवेक्षी अधिकार प्राप्त था।

यह तुलना यहाँ उल्लेखनीय है: सात दशक बाद, अमित शाह भी एक ऐसी व्यवस्था में गृह मंत्री बने जिसने 1947 की संरचनात्मक स्थितियों को कुछ हद तक पुनर्जीवित किया — गृह मंत्रालय का पुनर्गठन, और 2021 में कृषि से अलग कर एक नया सहकारिता मंत्रालय बनाकर व्यक्तिगत रूप से शाह को सौंपा जाना। "लीवर को एकत्र करने" की पटेल की यह प्रवृत्ति शाह में प्रतिध्वनित होती है।

पटेल के लिए गृह मंत्रालय का पद कोई औपचारिक पद नहीं था; वह राष्ट्र-निर्माण का प्रमुख उपकरण था। उस अराजक काल में, जब विभाजन के शरणार्थियों का सैलाब उमड़ रहा था, जब साम्प्रदायिक हिंसा भड़की हुई थी, और जब सैकड़ों रियासतें अपने भविष्य का निर्णय कर रही थीं, गृह मंत्रालय वस्तुतः नवजात राष्ट्र की धुरी था। पटेल ने इस धुरी को अपनी दृढ़ता, अपनी निर्णायकता, और अपनी संगठन-क्षमता से संचालित किया। यह उल्लेखनीय है कि उनके निधन के पश्चात रियासत मंत्रालय गृह मंत्रालय से अलग कर दिया गया, और किसी भी बाद के गृह मंत्री को वह अधिकार-संकेंद्रण कभी प्राप्त नहीं हुआ।

565 रियासतों का एकीकरण

14–15 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि को, ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य विघटित हुआ और लगभग **565 स्वशासित रियासतें** — जो नए राष्ट्र के क्षेत्रफल के लगभग 40% और जनसंख्या के 23% को आच्छादित करती थीं — ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त होकर अपने भाग्य का निर्णय करने को स्वतंत्र हो गईं। यह एक ऐसा क्षण था जो भारत को सैकड़ों टुकड़ों में बाँट सकता था।

पटेल की पद्धति कई चलते-पुर्ज़ों पर टिकी थी। केंद्र में थी **रियासत विभाग**, जिसके सचिव वी. पी. मेनन थे और मंत्री स्वयं पटेल। इसका सबसे बड़ा अस्त्र था

विलय-पत्र (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन) — एक ऐसा एक-पृष्ठीय दस्तावेज़ जो केवल तीन विषय — रक्षा, विदेश और संचार — संघ को सौंपता था। यह दस्तावेज़ क़ानूनी था, राजनीतिक नहीं; तात्कालिक था, बहु-खंडीय नहीं; और संप्रभुता के समर्पण में इतना सीमित कि राजा अपनी आंतरिक प्रतिष्ठा खोए बिना उस पर हस्ताक्षर कर सकें।

इसके साथ थी **प्रिवी पर्स** की व्यवस्था — पूर्व शासकों को क्षतिपूर्ति — और गरिमा-संरक्षक अनुनय की कूटनीति, जहाँ भावनात्मक रूप से असमंजस में पड़े राजकुमारों को सम्मानपूर्वक राज़ी किया जाता। परंतु पटेल ने बल को कभी विकल्प से बाहर नहीं रखा। उनके लिखित और मौखिक चेतावनियाँ — "यदि आवश्यक हुआ तो हम लड़ेंगे" — सुविचारित थीं, और सहमति के पीछे खड़े एक विश्वसनीय भय के रूप में काम करती थीं।

565 में से केवल तीन रियासतों ने आरंभिक विलय रोका — **जूनागढ़, हैदराबाद, और जम्मू-कश्मीर**। इन तीनों की कथाएँ आधुनिक भारत के एकीकरण की सबसे नाटकीय कथाएँ हैं, और इनमें से प्रत्येक का अमित शाह की कश्मीर-नीति से एक गहरा समानांतर है।

अनुनय की कूटनीति: "बातचीत, चाय, भोजन"

पटेल की एकीकरण-पद्धति का एक विशिष्ट आयाम था — गरिमा-संरक्षक अनुनय। पटेल और मेनन जानते थे कि राजकुमार सदियों से सत्ता और सम्मान के अभ्यस्त थे, और उन्हें बलपूर्वक झुकाने के बजाय सम्मानपूर्वक राज़ी करना अधिक प्रभावी होगा। इसलिए उन्होंने एक ऐसी कूटनीति अपनाई जिसमें राजकुमारों को बातचीत के लिए बुलाया जाता, उनका सत्कार किया जाता, उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा का आश्वासन दिया जाता, और प्रिवी पर्स के माध्यम से उनके आर्थिक हितों को सुरक्षित किया जाता।

परंतु इस अनुनय के पीछे सदैव एक दृढ़ संकल्प खड़ा था। पटेल का अनुनय कोई कमज़ोरी नहीं थी; वह एक रणनीति थी। राजकुमार जानते थे कि यदि वे सम्मानपूर्वक प्रस्तुत अवसर को अस्वीकार करते हैं, तो उन्हें एक दृढ़ राष्ट्र-शक्ति का सामना करना पड़ेगा। यह "मखमली दस्ताने में इस्पात की मुट्ठी" की कूटनीति थी — बाहर

शिष्टाचार, भीतर अडिग संकल्प। यही संयोजन — कूटनीतिक लचीलापन और सैद्धांतिक दृढ़ता का मेल — पटेल की राष्ट्र-निर्माण की कला का सार था, और यही संयोजन आगे चलकर अमित शाह की कार्यशैली में भी प्रतिध्वनित हुआ।

जूनागढ़: "पहले कूटनीति, फिर बल, अंत में जनमत"

जूनागढ़ की लगभग 80% जनसंख्या हिंदू थी, परंतु इसके नवाब ने 15 अगस्त 1947 को पाकिस्तान में विलय का निर्णय किया — जबकि जूनागढ़ की पाकिस्तान से कोई थल-सीमा नहीं थी। पटेल का तर्क था कि रियासत के विलय का निर्णय केवल शासक नहीं, बल्कि वहाँ की जनता करे।

घटनाक्रम तीव्र था: 25 सितंबर 1947 को बम्बई में एक अस्थायी सरकार (आरज़ी हुकूमत) की घोषणा; 160 गाँवों की नाकेबंदी और अधिग्रहण; और 9 नवंबर 1947 को नवाब का कराची पलायन, जिसके पश्चात भारत ने प्रशासन सँभाला। पटेल के वचन के अनुसार, 20 फरवरी 1948 को जनमत-संग्रह हुआ — और 2,01,457 मतदाताओं में से 1,90,870 ने भारत के पक्ष में मतदान किया, अर्थात 99.95%। जूनागढ़ को जनवरी 1949 में सौराष्ट्र में मिला दिया गया।

यह "पहले कूटनीति, बल आरक्षित, और अंत में जनमत" का जो ढाँचा था, वह आगे चलकर भारतीय राज्य की एक स्थायी रणनीति बना। और यद्यपि अमित शाह की 2019 की कश्मीर-कार्रवाई का क़ानूनी स्वरूप भिन्न था — जनमत-संग्रह नहीं, बल्कि संसदीय निरसन — परंतु अंतर्निहित स्थापत्य वही था: जहाँ क़ानूनी रूप से संभव हो वहाँ स्थानीय रूप से घोषणा करो, और राष्ट्र के साथ एकीकरण को अपरिवर्तनीय बना दो।

हैदराबाद: ऑपरेशन पोलो

हैदराबाद के निज़ाम, मीर उस्मान अली ख़ान, स्वतंत्रता या पाकिस्तान में विलय का स्वप्न देख रहे थे — जबकि उनकी लगभग 80% प्रजा हिंदू थी। उन्होंने क़ासिम रज़वी की "रज़ाकार" मिलिशिया को संगठित होने दिया, जिसकी संख्या चरम पर

लगभग 2,00,000 थी, और जिसने हिंदू ग्रामीण क्षेत्रों में "आतंक का राज" फैलाया।

मंत्रिमंडल में मतभेद स्पष्ट था: जहाँ प्रधानमंत्री नेहरू आरंभ में वार्ता के पक्ष में थे, वहीं **सरदार पटेल ने कठोर रुख़ अपनाया और वार्ता के प्रति कोई धैर्य नहीं दिखाया।** क़ानून मंत्री बी. आर. आंबेडकर ने भी हैदराबाद को एक ऐसी समस्या माना जो भारत के और विखंडन का कारण बन सकती थी। नवंबर 1947 के "स्टैंडस्टिल समझौते" के विफल होने के पश्चात, और 7 सितंबर 1948 को नेहरू द्वारा एक अल्टीमेटम जारी किए जाने के बाद, 13 सितंबर 1948 को **ऑपरेशन पोलो** आरंभ हुआ। लगभग 35,000 भारतीय सैनिकों ने पाँच दिनों में — 13 से 18 सितंबर तक — लगभग 22,000 राज्य-सैनिकों और अनियमित बलों को पराजित कर दिया, और निज़ाम ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इसे "पुलिस कार्रवाई" कहा गया, युद्ध नहीं।

हैदराबाद का यह प्रसंग अमित शाह के लिए एक प्रत्यक्ष उदाहरण बना — कि आंतरिक अव्यवस्था की स्थिति को वार्ता के बजाय एकीकरण की पूर्णता से सुलझाया जा सकता है। शाह जब कश्मीर के संदर्भ में दृढ़ता का तर्क देते हैं, तो हैदराबाद का यह ऐतिहासिक उदाहरण उनके तर्क को एक संवैधानिक-ऐतिहासिक आधार प्रदान करता है।

जूनागढ़ का विस्तृत प्रसंग

जूनागढ़ का प्रसंग पटेल की कार्यशैली का एक सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है। नवाब महाबत ख़ान का पाकिस्तान में विलय का निर्णय "क़ानूनी रूप से सही" था — आधिपत्य के सिद्धांत के अनुसार, शासक को विलय का अधिकार था। लॉर्ड माउंटबेटन और वी. पी. मेनन ने भी इसे क़ानूनी रूप से वैध माना।

परंतु पटेल ने एक उच्चतर सिद्धांत प्रस्तुत किया — आत्म-निर्णय का सिद्धांत। उन्होंने तर्क दिया कि रियासत के विलय का निर्णय केवल शासक नहीं, बल्कि वहाँ की जनता करे। 80% हिंदू बहुसंख्यक वाली जूनागढ़ की जनता पाकिस्तान में विलय नहीं चाहती थी। इस प्रकार पटेल ने एक क़ानूनी प्रश्न को एक नैतिक और लोकतांत्रिक प्रश्न में बदल दिया।

घटनाक्रम धैर्यपूर्ण किंतु निर्णायक था। बम्बई में सामलदास गांधी के नेतृत्व में एक अस्थायी सरकार (आरज़ी हुकूमत) की घोषणा हुई, जिसने विलय-पूर्व एक वैकल्पिक प्राधिकरण का काम किया। फिर 160 गाँवों की नाकेबंदी और अधिग्रहण हुआ। अंततः, प्रशासनिक और वित्तीय पतन के बाद, नवाब कराची भाग गया, और भारत ने "शांति की पुनर्स्थापना" के लिए प्रशासन सँभाला। और फिर, पटेल के वचन के अनुसार, 20 फरवरी 1948 को जनमत-संग्रह हुआ, जिसमें 99.95% जनता ने भारत को चुना।

यह "कूटनीति पहले, बल आरक्षित, जनमत अंत में" का ढाँचा पटेल की कार्यशैली का सार है — और यह अमित शाह की कश्मीर-कार्रवाई के साथ एक गहरा संरचनात्मक समानांतर प्रस्तुत करता है।

हैदराबाद: धैर्य की सीमा

हैदराबाद का प्रसंग पटेल की कार्यशैली का एक भिन्न आयाम दर्शाता है — कि धैर्य की भी एक सीमा होती है। निज़ाम मीर उस्मान अली ख़ान, जो उस समय विश्व के सबसे धनी व्यक्तियों में से एक थे, स्वतंत्रता या पाकिस्तान में विलय चाहते थे। उन्होंने क़ासिम रज़वी की रज़ाकार मिलिशिया को संगठित होने दिया, जिसने 80% हिंदू बहुसंख्यक वाली प्रजा पर "आतंक का राज" फैलाया।

यहाँ पटेल और नेहरू के दृष्टिकोण में स्पष्ट अंतर था। नेहरू आरंभ में वार्ता के पक्ष में थे; पटेल ने कठोर रुख़ अपनाया और वार्ता के प्रति कोई धैर्य नहीं दिखाया। क़ानून मंत्री बी. आर. आंबेडकर ने भी हैदराबाद को एक ऐसी समस्या माना जो भारत के और विखंडन का कारण बन सकती थी।

नवंबर 1947 के "स्टैंडस्टिल समझौते" के विफल होने और रज़ाकारों की बढ़ती हिंसा के पश्चात, 13 सितंबर 1948 को ऑपरेशन पोलो आरंभ हुआ। दो सेना-स्तंभ — विजयवाड़ा और सोलापुर से — हैदराबाद की ओर बढ़े। मात्र पाँच दिनों में, 18 सितंबर तक, निज़ाम की सेना पराजित हो गई और उन्होंने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

इसे "पुलिस कार्रवाई" कहा गया, युद्ध नहीं — एक सुविचारित शब्दावली जिसने यह संकेत दिया कि यह किसी सहयोगी-राजकुमार के विरुद्ध युद्ध नहीं, बल्कि

आंतरिक अव्यवस्था के विरुद्ध राज्य की वैध कार्रवाई थी। यह सिद्धांत — कि आंतरिक अव्यवस्था को वार्ता के बजाय निर्णायक कार्रवाई से सुलझाया जा सकता है — आगे चलकर अमित शाह की कश्मीर और नक्सलवाद की नीतियों में प्रतिध्वनित हुआ।

"लौह पुरुष"

पटेल को सार्वभौमिक रूप से "भारत का लौह पुरुष" कहा जाता है — एक उपाधि जो चरित्र की दृढ़ता, उद्देश्य की स्पष्टता और अविचल देशभक्ति पर बल देती है। यह उपाधि उनकी समूची कार्यशैली का सार है: एक ऐसा नेता जो कठिन निर्णय लेने से नहीं हिचकता, जो अनसुलझे प्रश्नों को लटकाए रखने के पक्ष में नहीं, और जिसके लिए राष्ट्र की एकता सर्वोपरि है। (इस उपाधि के गहरे ऐतिहासिक और दार्शनिक निहितार्थों की — विशेषकर पटेल और बिस्मार्क की तुलना की — विस्तृत विवेचना इस पुस्तक के एक आगामी अध्याय में की गई है, जहाँ हम "नए लौह पुरुष" की अवधारणा को पूर्णता से देखेंगे।)

यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि पटेल की विशिष्टता यह थी कि उन्होंने एकता का लक्ष्य अधिनायकवाद से नहीं, बल्कि संवैधानिक और लोकतांत्रिक मार्ग से प्राप्त किया। उन्होंने एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की नींव रखी। और जैसा कि हम आगे देखेंगे, अमित शाह की कश्मीर-कार्रवाई की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यही थी कि वह बल से नहीं, बल्कि संसदीय और संवैधानिक मार्ग से संपन्न हुई — एक प्रकार से "पटेल 2.0"।

वी. पी. मेनन: एक अदृश्य साझेदार

पटेल की एकीकरण-गाथा एक महत्वपूर्ण साझेदारी के बिना अधूरी है — वी. पी. मेनन के साथ उनकी साझेदारी। मेनन रियासत विभाग के सचिव थे, और पटेल के सबसे विश्वसनीय सहयोगी। जहाँ पटेल राजनीतिक अधिकार और दृढ़ता प्रदान करते थे, वहीं मेनन प्रशासनिक विवरण, क़ानूनी प्रारूपण, और राजाओं के साथ व्यक्तिगत वार्ता का कार्य सँभालते थे।

यह साझेदारी एक रोचक समानांतर प्रस्तुत करती है। जैसे पटेल और मेनन की जोड़ी ने रियासतों के एकीकरण को संभव बनाया — एक राजनीतिक अधिकार, दूसरा प्रशासनिक क्रियान्वयन — वैसे ही मोदी और शाह की जोड़ी ने आधुनिक भारत के एकीकरण-कार्यों को संभव बनाया। दोनों युगों में, दृष्टि और क्रियान्वयन का यह श्रम-विभाजन ही सफलता का रहस्य था।

मेनन की पुस्तक द इंटीग्रेशन ऑफ़ द इंडियन स्टेट्स (1956) आज भी इस ऐतिहासिक प्रक्रिया का सबसे प्रामाणिक प्रत्यक्ष-विवरण मानी जाती है, और यह दर्शाती है कि एकीकरण कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि एक सुनियोजित, धैर्यपूर्ण और सूक्ष्म प्रक्रिया थी — ठीक वैसी ही जैसी शाह की कार्यशैली है। इस पुस्तक का महत्व इस बात में भी है कि यह दर्शाती है कि एक महान राजनीतिक नेता को एक समान रूप से सक्षम प्रशासनिक साझेदार की आवश्यकता होती है — दृष्टि और क्रियान्वयन, दोनों के बिना कोई बड़ा राष्ट्रीय कार्य संभव नहीं।

“इस्पात का ढाँचा”: अखिल भारतीय सेवाएँ

पटेल की राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि केवल भौगोलिक एकीकरण तक सीमित नहीं थी; वह प्रशासनिक एकीकरण तक भी विस्तृत थी। पटेल ने अखिल भारतीय सेवाओं — भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) और भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) — की स्थापना की, जिसे उन्होंने भारत का “इस्पात का ढाँचा” (स्टील फ्रेम) कहा। भारतीय प्रशासनिक सेवा का गठन 26 जनवरी 1950 को हुआ, और इसे संविधान के अनुच्छेद 312(2) तथा अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 के माध्यम से संस्थागत रूप दिया गया।

संविधान सभा में अपने प्रसिद्ध भाषण में पटेल ने चेतावनी दी थी: “इस प्रशासनिक व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है... ये लोग ही वह उपकरण हैं। इन्हें हटा दीजिए, और मुझे पूरे देश में अराजकता के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता।” यह दृष्टि — कि राष्ट्र को एक स्थायी, अराजनीतिक, और सक्षम प्रशासनिक कैडर की आवश्यकता है — आज भी भारतीय राज्य की आधारशिला है।

पटेल की यह दूरदृष्टि असाधारण थी। उन्होंने इस “इस्पात के ढाँचे” को इस प्रकार रचा कि एक अधिकारी को कार्यकाल की वह सुरक्षा प्राप्त हो जिससे वह

किसी पक्षपाती मुख्यमंत्री को "नहीं" कह सके। अर्थात पटेल चाहते थे कि प्रशासन राजनीति से ऊपर रहे, और राष्ट्र की निरंतरता को सत्ता-परिवर्तनों से स्वतंत्र रखे। यह संस्थागत दूरदृष्टि — कि व्यक्ति आते-जाते रहेंगे, परंतु संस्थाएँ स्थायी रहनी चाहिए — पटेल की राष्ट्र-निर्माण-दृष्टि का केंद्रीय स्तंभ थी।

यहाँ एक और समानांतर उभरता है। जैसे पटेल ने प्रशासनिक संस्थाओं के निर्माण को राष्ट्र-निर्माण का अभिन्न अंग माना, वैसे ही शाह ने अपने कार्यकाल में संस्थागत निर्माण पर बल दिया — फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय से लेकर अपराध और अपराधी ट्रैकिंग के राष्ट्रव्यापी पुलिस-नेटवर्क तक। दोनों के लिए, राष्ट्र-निर्माण केवल नाटकीय निर्णयों का नहीं, बल्कि स्थायी संस्थाओं के धैर्यपूर्ण निर्माण का भी नाम था।

पटेल का जीवन-दर्शन

पटेल की राष्ट्र-निर्माण-दृष्टि के मूल में एक स्पष्ट जीवन-दर्शन था। 1928 में सूरत के विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था: "जब तक तुम मरना नहीं जानते, तब तक तुम्हारे लिए मारना सीखना व्यर्थ है। भारत को क्रूर बल से लाभ नहीं होगा।" यह कथन एक ऐसे नेता की झलक देता है जो दृढ़ता और अहिंसा को एक साथ साधता था — जो आवश्यकता पड़ने पर बल का प्रयोग करने से नहीं हिचकता था, परंतु जिसके लिए बल अंतिम विकल्प था, प्रथम नहीं।

इसी प्रकार, धर्म के विषय में पटेल का दृष्टिकोण स्पष्ट था। 15 मई 1950 को एर्नाकुलम में उन्होंने कहा था: "धर्म मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है।" यह कथन एक ऐसे राष्ट्र-निर्माता की दृष्टि को प्रकट करता है जो एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की कल्पना करता था — जहाँ धर्म व्यक्तिगत आस्था का विषय हो, और राष्ट्र की एकता उससे ऊपर। ये जीवन-मूल्य पटेल को केवल एक कुशल प्रशासक नहीं, बल्कि एक गहरे राजनेता के रूप में स्थापित करते हैं।

अधूरा कार्य

पटेल का निधन 15 दिसंबर 1950 को हुआ — स्वतंत्रता के मात्र साढ़े तीन वर्ष पश्चात। उनके जीवनकाल में 565 में से 562 रियासतों का एकीकरण पूर्ण हो चुका

था। परंतु एक रियासत — जम्मू-कश्मीर — का प्रश्न अधूरा रह गया, अनुच्छेद 370 की "अस्थायी" व्यवस्था के रूप में।

यही वह अधूरा कार्य था जो सात दशकों तक इतिहास की प्रतीक्षा-सूची में दर्ज रहा। और इसी अधूरे कार्य की कथा — पटेल, नेहरू और कश्मीर के त्रिकोण की कथा — अगले अध्याय का विषय है।

अध्याय 5

अधूरा सपना: पटेल, नेहरू और कश्मीर

आधुनिक भारत के एकीकरण की कथा में जम्मू-कश्मीर वह अध्याय है जो अधूरा रह गया। यह तीसरी "होल्डआउट" रियासत थी, और पटेल की गाथा में सबसे विवादास्पद। इस अध्याय को समझे बिना न तो अनुच्छेद 370 के निरसन का महत्व समझा जा सकता है, न ही पटेल और शाह के बीच खींची जाने वाली रेखा का।

अक्टूबर 1947: आक्रमण और विलय

1947 की मध्यरात्रि को, महाराजा हरि सिंह एक स्वतंत्र संप्रभु थे, जो भारत और पाकिस्तान के बीच निर्णय को टाल रहे थे। महाराजा की यह दुविधा कश्मीर की विशिष्ट स्थिति से उपजी थी — एक हिंदू शासक, एक मुस्लिम-बहुल जनसंख्या, और दोनों नवजात राष्ट्रों से लगी हुई सीमाएँ। वे शायद एक स्वतंत्र रियासत की कल्पना कर रहे थे, जो दोनों देशों के बीच एक तटस्थ स्थिति बनाए रखे। परंतु इतिहास ने उन्हें यह विलासिता प्रदान नहीं की।

22 अक्टूबर 1947 के आसपास, पाकिस्तान से क़बायली आक्रमणकारियों (पख़्तून लश्कर) ने सीमा पार करना आरंभ कर दिया। यह कोई स्वतःस्फूर्त आक्रमण नहीं था; यह एक सुनियोजित घुसपैठ थी, जिसका उद्देश्य महाराजा के निर्णय-विलंब का लाभ उठाकर कश्मीर पर बलपूर्वक क़ब्ज़ा करना था। आक्रमणकारी श्रीनगर की ओर तेज़ी से बढ़े, लूटपाट और हिंसा करते हुए। इस आक्रमण ने महाराजा को 26 अक्टूबर 1947 को **विलय-पत्र** पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया, जिसके तुरंत पश्चात भारतीय सेना को हवाई मार्ग से श्रीनगर पहुँचाया गया।

यह उल्लेखनीय है कि कश्मीर का विलय ठीक उसी विलय-पत्र के ढाँचे के अंतर्गत हुआ जिसे पटेल और मेनन ने अन्य रियासतों के लिए तैयार किया था — रक्षा, विदेश और संचार, ये तीन विषय संघ को सौंपते हुए। इस अर्थ में, कश्मीर का

विलय क़ानूनी रूप से अन्य रियासतों के विलय जैसा ही था। अंतर बाद में, अनुच्छेद 370 की "अस्थायी" व्यवस्था के साथ, उत्पन्न हुआ।

पटेल का रुख़ बनाम नेहरू की सावधानी

कश्मीर के संदर्भ में पटेल के रुख़ को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है, और यह पुस्तक उस जटिलता को स्वीकार करती है। एक दृष्टिकोण यह है कि पटेल कश्मीर के संदर्भ में अधिक दृढ़ रुख़ चाहते थे, और नेहरू की अंतर्राष्ट्रीयतावादी सावधानी से असहमत थे। भाजपा के विचारक राम माधव ने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्द दिए: कि पटेल की प्रवृत्ति विलय-पत्र पर हस्ताक्षर के तुरंत पश्चात "भारतीय सेना को श्रीनगर भेजने" की थी, परंतु नेहरू ने इस मामले को अंतर्राष्ट्रीय बना दिया और इसे पटेल के अधिकार-क्षेत्र से हटा दिया। राम माधव ने 7 नवंबर 2020 को यहाँ तक कहा कि "यदि सरदार पटेल भारत के पहले प्रधानमंत्री होते, तो जम्मू-कश्मीर की समस्या ही नहीं होती।"

यहाँ दो निर्णायक कारक थे जिन्होंने कश्मीर को अन्य रियासतों से अलग बना दिया। पहला, नेहरू द्वारा 1 जनवरी 1948 को मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाना, जिसने एक आंतरिक एकीकरण-प्रश्न को एक अंतर्राष्ट्रीय विवाद में बदल दिया। दूसरा, 1948 में युद्धविराम की घोषणा — एक ऐसे समय में जब, अनेक भारतीय रणनीतिकारों के अनुसार, भारतीय सेना बढ़त बना रही थी। यह दोनों निर्णय कश्मीर-प्रश्न को अनसुलझा छोड़ने में निर्णायक सिद्ध हुए, और दशकों तक एक स्थायी विवाद की जड़ बने।

यही वह ऐतिहासिक विवाद है जिसे आगे चलकर अमित शाह और नरेंद्र मोदी ने बार-बार उठाया। प्रधानमंत्री मोदी ने 31 अक्टूबर 2025 को राष्ट्रीय एकता दिवस पर कहा: "सरदार पटेल संपूर्ण कश्मीर को भारत में मिलाना चाहते थे, ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने अन्य रियासतों के साथ किया। परंतु नेहरू जी ने उनकी इच्छा को पूरा नहीं होने दिया।"

यहाँ बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि हम यह भी स्वीकार करें कि कुछ इतिहासकार इस आख्यान को चुनौती देते हैं, और तर्क देते हैं कि वी. पी. मेनन के विवरण में पटेल द्वारा आक्रमण से पहले "संपूर्ण कश्मीर के विलय" की वकालत

स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं है। परंतु जो तथ्य निर्विवाद है, वह यह कि कश्मीर का प्रश्न अनसुलझा रह गया — और यही अनसुलझापन, यही "अस्थायी" व्यवस्था, सात दशकों तक एक स्थायी विसंगति बनी रही।

"हैदराबाद पहले, कश्मीर बाद में": पटेल की प्राथमिकता-दृष्टि

पटेल के कश्मीर-रुख़ को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख आवश्यक है — पटेल ने हैदराबाद को कश्मीर से अधिक महत्वपूर्ण माना था। यह कोई आकस्मिक प्राथमिकता नहीं थी, बल्कि एक यथार्थवादी रणनीतिकार की सुविचारित दृष्टि थी। हैदराबाद भारत के हृदय में स्थित था — एक ऐसी विशाल रियासत जो यदि स्वतंत्र या पाकिस्तान-समर्थक रहती, तो भारत के भौगोलिक मध्य में एक स्थायी काँटा बन जाती। पटेल के लिए, आंतरिक एकता की अखंडता सर्वोपरि थी।

यह प्राथमिकता-दृष्टि पटेल के यथार्थवाद को दर्शाती है। वे एक ऐसे नेता थे जो भावना से नहीं, बल्कि रणनीतिक गणना से निर्णय लेते थे। उन्होंने सीमित संसाधनों और सीमित समय की वास्तविकता को पहचाना, और सबसे तात्कालिक ख़तरे — हैदराबाद — पर अपना पूरा बल केंद्रित किया। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि वे कश्मीर को छोड़ने के पक्ष में थे। पटेल की समूची कार्यशैली निर्णायकता की थी, और वे अनसुलझे प्रश्नों को अनिश्चित काल तक लटकाए रखने के विरोधी थे। यही कारण है कि कश्मीर का अनसुलझा रह जाना उनके लिए एक अपूर्ण कार्य था, न कि एक स्वीकृत समझौता।

अनुच्छेद 370: "अस्थायी" व्यवस्था

अनुच्छेद 370 को 17 अक्टूबर 1949 को एक अस्थायी प्रावधान के रूप में अपनाया गया, जो जम्मू-कश्मीर को अपना अलग संविधान और रक्षा, विदेश तथा संचार को छोड़कर सभी विषयों पर स्वायत्तता देता था। एक व्यापक रूप से प्रचलित प्रसंग के अनुसार, जब नेहरू ने पटेल से इसे मंत्रिमंडल में पारित कराने को कहा, तो पटेल ने इसे अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया।

शब्द "अस्थायी" यहाँ निर्णायक है। संविधान-निर्माताओं ने इसे एक स्थायी व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक संक्रमणकालीन प्रावधान के रूप में रखा था।

संविधान के भाग XXI में, जिसका शीर्षक ही "अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष प्रावधान" है, इस अनुच्छेद को रखा जाना अपने आप में इसकी प्रकृति का प्रमाण है। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसे समय के साथ समाप्त हो जाना था, एक पुल जो एक विशेष परिस्थिति से सामान्य स्थिति की ओर ले जाना था।

परंतु राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में, यह "अस्थायी" प्रावधान दशक-दर-दशक टलता रहा, और एक ऐसी स्थायी विसंगति बन गया जिसने — आलोचकों के अनुसार — जम्मू-कश्मीर में एक "दूसरे दर्जे" की नागरिकता और सीमा-पार आतंकवाद के लिए एक आवरण उत्पन्न किया। जो प्रावधान संक्रमण का साधन बनना था, वह अलगाव का स्थायी प्रतीक बन गया। यही वह विडंबना थी जो सात दशकों तक भारतीय राष्ट्र-राज्य के केंद्र में एक अनसुलझी गुत्थी की भाँति बैठी रही।

पटेल की दूरदृष्टि: तिब्बत की चेतावनी

पटेल की राष्ट्रीय-सुरक्षा-दृष्टि का एक और प्रमाण उनका 7 नवंबर 1950 का वह पत्र है, जो उन्होंने अपने निधन से मात्र कुछ ही सप्ताह पहले नेहरू को लिखा — जिसमें उन्होंने तिब्बत में चीन की मंशा के विषय में भारत को चेतावनी दी। यह संस्थापक-युग की सबसे अधिक उद्धृत गुप्तचर-सलाहों में से एक है। यह पत्र दर्शाता है कि पटेल के लिए विदेश नीति, एकीकरण और गृह मामले — ये सब एक ही प्रश्न के अंग थे। वे एक ऐसे राजनेता थे जो दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित को क्षणिक राजनयिक सुविधा से ऊपर रखते थे।

इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व असाधारण है। पटेल ने उस समय चीन के विषय में जो चेतावनी दी, वह आगे चलकर 1962 के भारत-चीन युद्ध में दुखद रूप से सत्य सिद्ध हुई। यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि पटेल केवल एक एकीकरणकर्ता ही नहीं, बल्कि एक दूरदर्शी रणनीतिकार भी थे, जो भारत की उत्तरी सीमाओं के भविष्य के ख़तरों को अपने समय से बहुत पहले देख सकते थे। उनकी यह दृष्टि — कि सीमा, सुरक्षा और संप्रभुता अविभाज्य हैं — भारतीय राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का एक केंद्रीय सूत्र बनी।

यह दृष्टि — दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित की प्राथमिकता — ही वह सूत्र है जो पटेल को अमित शाह से जोड़ता है। जैसे पटेल ने तिब्बत के विषय में दूरदृष्टि दिखाई, वैसे

ही शाह ने कश्मीर के विषय में सात दशक पुरानी विसंगति को सुलझाने का दीर्घकालिक संकल्प दिखाया।

सितंबर 1947 का पत्राचार

पटेल और नेहरू के बीच कश्मीर को लेकर हुए पत्राचार से इतिहास का एक नाज़ुक क्षण उजागर होता है। 27 सितंबर 1947 को नेहरू ने पटेल को लिखे एक पत्र में स्थिति की तात्कालिकता व्यक्त की — कि पाकिस्तान की रणनीति सर्दियों से पहले कश्मीर में घुसपैठ करने और फिर घाटी के अलग-थलग पड़ जाने का लाभ उठाने की है। नेहरू ने स्वयं अक्टूबर के आरंभ में कश्मीर का दौरा किया, जबकि पटेल और मेनन जम्मू में सक्रिय रहे। मेनन ने जम्मू जाकर 26 अक्टूबर को महाराजा से विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कराए, जिसके पश्चात भारतीय सेना को तुरंत हवाई मार्ग से भेजा गया।

यह पत्राचार एक महत्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करता है — कि कश्मीर के विलय के व्यावहारिक, प्रशासनिक कार्य में पटेल और मेनन की केंद्रीय भूमिका थी। यह वही पटेल-मेनन जोड़ी थी जिसने अन्य 562 रियासतों का एकीकरण संभव बनाया था, और कश्मीर के विलय-पत्र पर हस्ताक्षर भी उसी जोड़ी के प्रयास से हुए। यह पत्राचार दर्शाता है कि कश्मीर का प्रश्न आरंभ से ही जटिल था, और इसमें अनेक कारक — सैन्य, राजनयिक, और संवैधानिक — आपस में उलझे हुए थे। परंतु जो तथ्य निर्विवाद है, वह यह कि अंततः यह प्रश्न अनसुलझा रह गया, और अनुच्छेद 370 की "अस्थायी" व्यवस्था एक स्थायी गुत्थी बन गई।

एक ऐतिहासिक विवाद की ईमानदार प्रस्तुति

इस पुस्तक की बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि हम कश्मीर-प्रश्न पर पटेल के रुख़ के विवाद को निष्पक्षता से प्रस्तुत करें। एक ओर, भाजपा और दक्षिणपंथी विचारकों का आख्यान यह है कि पटेल कश्मीर के संदर्भ में अधिक दृढ़ रुख़ चाहते थे, और नेहरू की सावधानी ने उस अवसर को गँवा दिया। दूसरी ओर, कुछ इतिहासकार तर्क देते हैं कि वी. पी. मेनन के समकालीन विवरण में पटेल द्वारा आक्रमण से पूर्व "संपूर्ण कश्मीर के विलय" की स्पष्ट वकालत दर्ज नहीं है।

सत्य संभवतः इन दोनों चरम दृष्टिकोणों के बीच कहीं है। पटेल एक यथार्थवादी थे; उन्होंने हैदराबाद को कश्मीर से अधिक महत्वपूर्ण माना था। परंतु यह भी निर्विवाद है कि पटेल की समूची कार्यशैली निर्णायकता की थी, और वे अनसुलझे प्रश्नों को लटकाए रखने के पक्षधर नहीं थे। यही कारण है कि जब मोदी और शाह पटेल का आह्वान करते हैं, तो वे एक ऐसे राजनेता का आह्वान करते हैं जिसकी पहचान दृढ़ता और निर्णायकता थी — और जिसका अधूरा कार्य, उनके अनुसार, इतिहास की प्रतीक्षा में पड़ा रहा।

यह ईमानदार प्रस्तुति इस पुस्तक के आख्यान को कमज़ोर नहीं, बल्कि सशक्त करती है। क्योंकि चाहे पटेल का व्यक्तिगत रुख़ जो भी रहा हो, यह तथ्य अकाट्य है कि कश्मीर भारतीय एकीकरण की एकमात्र ऐसी कथा थी जो अधूरी रह गई। और इतिहास में अधूरे कार्य अपने उत्तराधिकारी की प्रतीक्षा करते हैं। पटेल का यथार्थवाद और निर्णायकता — ये दोनों गुण ही वह कसौटी हैं जिन पर भविष्य के नेताओं को परखा जाएगा।

कश्मीर की विशिष्टता: एक रियासत जो अपवाद बन गई

कश्मीर के प्रश्न को समग्रता में समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि यह रियासत अन्य 562 रियासतों से किन कारणों से भिन्न थी, और क्यों यह अपवाद बन गई जहाँ शेष सभी नियम बन गई। पहला कारण भौगोलिक था — कश्मीर पाकिस्तान और भारत, दोनों से लगी सीमा पर स्थित था, और इसकी रणनीतिक स्थिति इसे एक संवेदनशील क्षेत्र बनाती थी। दूसरा कारण जनसांख्यिकीय था — एक हिंदू शासक और एक मुस्लिम-बहुल जनसंख्या का संयोजन, जो विभाजन की उस तर्क-पद्धति के ठीक विपरीत था जिस पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ था।

परंतु सबसे निर्णायक कारक राजनीतिक था। जूनागढ़ और हैदराबाद के प्रसंगों में, चाहे जनमत-संग्रह का मार्ग हो या "पुलिस कार्रवाई" का, एकीकरण को तीव्रता और पूर्णता से संपन्न किया गया। कश्मीर में, इसके विपरीत, आक्रमण, युद्धविराम, संयुक्त राष्ट्र में मामले का अंतर्राष्ट्रीयकरण, और अंततः अनुच्छेद 370 की "अस्थायी" व्यवस्था — इन सबने मिलकर एकीकरण को अधूरा और अनिश्चित बना

दिया। जहाँ अन्य रियासतों के विलय ने एक निश्चित, अपरिवर्तनीय अंत-बिंदु प्राप्त किया, वहीं कश्मीर का विलय एक खुले, अनसुलझे प्रश्न के रूप में लटका रह गया।

यह विरोधाभास ही पटेल-शाह आख्यान का केंद्रीय बिंदु है। तीन में से दो "होल्डआउट" रियासतों — जूनागढ़ और हैदराबाद — का प्रश्न पटेल के जीवनकाल में ही निर्णायक रूप से सुलझा दिया गया। केवल तीसरी — कश्मीर — अधूरी रही। और यह अधूरापन ही वह विरासत बनी जो आगे आने वाली पीढ़ियों के समक्ष एक अनुत्तरित प्रश्न की भाँति खड़ी रही।

"अस्थायी" का स्थायीपन: एक संवैधानिक विडंबना

अनुच्छेद 370 की कहानी का सबसे विडंबनापूर्ण पहलू यह है कि एक प्रावधान जो अपने मूल स्वरूप में, अपने शब्दों में, और अपने संवैधानिक स्थान में "अस्थायी" था, वह दशक-दर-दशक चलते हुए एक स्थायी संस्था में बदल गया। यह विडंबना भारतीय राजनीति की एक गहरी प्रवृत्ति को उजागर करती है — कि कठिन प्रश्नों को टालना अल्पकाल में सुविधाजनक प्रतीत होता है, परंतु दीर्घकाल में वह टालमटोल स्वयं एक स्थायी समस्या बन जाती है।

यह ठीक वही प्रवृत्ति थी जिसके पटेल विरोधी थे। पटेल की समूची कार्यशैली अनसुलझे प्रश्नों को निर्णायक रूप से सुलझाने की थी — चाहे वह जूनागढ़ हो, हैदराबाद हो, या रियासतों के एकीकरण का विशाल कार्य। उनके लिए, किसी प्रश्न को "अस्थायी" व्यवस्था के सहारे अनिश्चित काल तक टाल देना एक राजनीतिक विफलता थी, न कि समाधान। और यही कारण है कि कश्मीर का अनसुलझा रह जाना उनकी राष्ट्र-निर्माण-दृष्टि के विरुद्ध एक अपवाद था।

इस संवैधानिक विडंबना को समझे बिना उस ऐतिहासिक संकल्प को नहीं समझा जा सकता जो आगे चलकर इस अधूरे कार्य को पूर्ण करने की दिशा में उठा। एक "अस्थायी" प्रावधान का सात दशकों तक स्थायी बने रहना — यह केवल एक संवैधानिक तकनीकी प्रश्न नहीं था, बल्कि राष्ट्रीय एकता और संकल्प-शक्ति का एक मौलिक प्रश्न था।

अधूरे प्रश्न की विरासत

इस प्रकार, सरदार पटेल ने आधुनिक भारत का जो विशाल भवन खड़ा किया, उसमें एक खिड़की अधूरी रह गई — जम्मू-कश्मीर। यह अधूरापन कोई गौण विवरण नहीं था; यह भारतीय राष्ट्र-राज्य की एक केंद्रीय अनसुलझी गुत्थी थी। एक ओर 562 रियासतों का पूर्ण और अपरिवर्तनीय एकीकरण; दूसरी ओर एक रियासत, जो "अस्थायी" व्यवस्था की एक संवैधानिक छाया में, राष्ट्र-धारा से कुछ अलग, अधर में लटकी रही।

पटेल का निधन इस प्रश्न को अनसुलझा छोड़ गया। और दशक-दर-दशक, यह "अस्थायी" प्रावधान एक ऐसी स्थायी विसंगति बनता गया जिसने अनेक प्रश्नों को जन्म दिया — एकीकरण की पूर्णता का प्रश्न, राष्ट्रीय एकता का प्रश्न, और सबसे बढ़कर, उस संकल्प का प्रश्न जो इस अधूरे कार्य को पूर्ण करने का साहस रखता हो।

और यहीं से अमित शाह की कथा पटेल की कथा से जुड़ती है। क्योंकि इतिहास ने जो खिड़की अधूरी छोड़ी थी, उसे पूर्ण करने का दायित्व एक ऐसे व्यक्ति के कंधों पर आया जो स्वयं को पटेल की परंपरा का उत्तराधिकारी मानता था। परंतु उस ऐतिहासिक क्षण तक पहुँचने से पहले, शाह को एक लंबी यात्रा तय करनी थी — गुजरात के गृह मंत्री के रूप में शासन की प्रयोगशाला से लेकर भाजपा को विश्व का सबसे बड़ा राजनीतिक दल बनाने तक।

उस यात्रा की ओर अब हम बढ़ते हैं।

खंड दो — सत्ता, संगठन और एकीकरण

अध्याय 6

गुजरात गृह मंत्री: शासन की प्रयोगशाला

जब दिसंबर 2002 के गुजरात विधानसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी ने भाजपा को विजय दिलाई, तो अमित शाह को गृह राज्य मंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई — और साथ ही एक असाधारण दर्जन से अधिक विभागों का प्रभार: गृह, क़ानून एवं न्याय, जेल, सीमा सुरक्षा, नागरिक सुरक्षा, उत्पाद शुल्क, परिवहन, मद्य-निषेध, होम गार्ड, ग्राम रक्षक दल, पुलिस आवास, और विधायी एवं संसदीय कार्य। यह विभागों का विस्तार मोदी के विश्वास और शाह की परिश्रम-क्षमता, दोनों को दर्शाता था।

यह वह काल था जिसे हम “शासन की प्रयोगशाला” कह सकते हैं — वह अवधि जिसमें शाह ने पहली बार राज्य-शक्ति के लीवरों को चलाना सीखा, और वे प्रशासनिक तथा संस्थागत प्रयोग किए जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्तर पर दोहराए गए।

मंत्री-पद तक की यात्रा

यह समझना आवश्यक है कि 2002 में जब शाह को यह असाधारण प्रभार सौंपा गया, तब वे आकाश से उतरे कोई नवागंतुक नहीं थे। यह नियुक्ति दो दशकों के मौन परिश्रम का स्वाभाविक परिणाम थी। 1977 में, केवल तेरह वर्ष की आयु में, मनसा में जनसंघ की प्रत्याशी मणिबेन पटेल के लिए पोस्टर चिपकाते हुए संघ के वरिष्ठों की दृष्टि उन पर पड़ी थी। 1982 में अहमदाबाद में उनकी भेंट नरेंद्र मोदी से हुई, जो उस समय तीन ज़िलों के प्रभारी एक संघ-प्रचारक थे। एक बूथ-कार्यकर्ता से लेकर अहमदाबाद नगर भाजपा के सचिव, और 1999 में गुजरात भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष तक — यह क्रमिक उत्थान संगठन में जड़ें जमाने की उसी धैर्यपूर्ण पद्धति का प्रमाण था जो आगे चलकर उनकी पहचान बनी।

इस बीच, सहकारी और निगमित जगत में भी उन्होंने अपनी प्रशासनिक क्षमता सिद्ध कर दी थी। गुजरात राज्य वित्तीय निगम (जीएसएफसी) के अध्यक्ष के रूप में, उनके अपने विवरण के अनुसार, उन्होंने शुद्ध लाभ में 214 प्रतिशत की वृद्धि की और

संस्था का आईपीओ भी निकाला। अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक के सबसे युवा अध्यक्ष के रूप में उन्होंने ग्रामीण गुजरात के जाति, समुदाय और आर्थिक भूगोल का एक सजीव आँकड़ा-कोश अपने मन में बना लिया था। इस प्रकार जब वे 2002 में गृह राज्य मंत्री बने, तो वे आँकड़ों, संस्थाओं और जनविश्वास — तीनों की भाषा पहले से ही जानते थे।

क़ानून-व्यवस्था का रिकॉर्ड

शाह के अपने विवरण के अनुसार, उनके नेतृत्व में गुजरात गृह मंत्रालय ने देश में सबसे कम पुलिस मुठभेड़ों में से एक का रिकॉर्ड दर्ज किया — एक उल्लेखनीय आँकड़ा उस दशक के लिए जो स्वतंत्र भारत के हाल के इतिहास की सबसे बड़ी सांप्रदायिक हिंसा से आरंभ हुआ था। आधिकारिक जीवनी उनके कार्यकाल को समग्र अपराध-दर में गिरावट और सांप्रदायिक सद्भाव की रक्षा का श्रेय देती है।

शाह का अपना तर्क इस अवधि के विषय में तीन दावों के इर्द-गिर्द केंद्रित है: अपराध घटा, सांप्रदायिक सद्भाव बना रहा, और सुरक्षा-तंत्र को व्यावसायिक बनाने के लिए संस्थाएँ खड़ी की गईं। यह एक संकट-प्रबंधन के बजाय दीर्घकालिक संस्था-निर्माण की मुद्रा थी — एक ऐसी मुद्रा जो आगे चलकर 2014 के पश्चात उनके हर निर्माण-कार्य को संचालित करने वाली थी।

इस “सबसे कम मुठभेड़ों” वाले दावे का महत्व उसके ऐतिहासिक संदर्भ में और भी गहरा हो जाता है। 2002 की हिंसा के पश्चात गुजरात पर देश-विदेश की दृष्टि टिकी थी; प्रत्येक घटना सूक्ष्मता से देखी जा रही थी। ऐसे माहौल में एक सुरक्षा-तंत्र को इस प्रकार संचालित करना कि वह बल-प्रयोग के बजाय व्यवस्था और निवारण पर टिके एक प्रशासनिक परिपक्वता की माँग करता था। शाह के समर्थकों के लिए यह रिकॉर्ड इस बात का प्रमाण है कि एक दृढ़ गृह मंत्री और एक संयमित गृह मंत्री होना परस्पर-विरोधी नहीं — बल्कि एक ही अनुशासन के दो पहलू हैं।

विधायी उत्पादन

गृह राज्य मंत्री के रूप में शाह द्वारा संचालित दो विधेयक उनकी बाद की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के स्तंभ बने:

पहला था **गुजरात धार्मिक स्वतंत्रता विधेयक, 2004**, जिसने विवाह, ग़लतबयानी या प्रलोभन के माध्यम से "बलात्" या "प्रलोभित" धर्मांतरण को अपराध घोषित किया, और उस सैद्धांतिक टेम्पलेट की नींव रखी जो दो दशक बाद धर्मांतरण-विरोधी क़ानूनों की व्यापक राष्ट्रीय बहस का विषय बना।

दूसरा था **गुजरात संगठित अपराध नियंत्रण (संशोधन) विधेयक, 2004**, जिसने पुलिस के लिए निवारक-निरोध और गवाह-संरक्षण की शक्तियों को सुदृढ़ किया, और राष्ट्रीय स्तर के उन उपकरणों की पूर्वपीठिका रची जो आगे चलकर आंतरिक-सुरक्षा के ढाँचे का अंग बने।

विधायी दूरदृष्टि: टेम्पलेट का जन्म

इन दोनों विधेयकों का असली महत्व उनके तत्कालीन प्रभाव में नहीं, बल्कि उनकी दूरगामी प्रतिध्वनि में निहित है। 2004 में, जब शाह ने धार्मिक स्वतंत्रता विधेयक को सदन के पटल पर रखा, तब यह एक राज्य-स्तरीय विधायी कार्य प्रतीत होता था। परंतु पीछे मुड़कर देखें तो यह एक राष्ट्रीय बहस का प्रथम प्रारूप था। आगामी वर्षों में अनेक राज्यों ने इसी ढाँचे पर अपने धर्मांतरण-विरोधी क़ानून बनाए, और राष्ट्रीय विमर्श में यह विषय बार-बार लौटा। शाह की पद्धति की यह एक स्थायी विशेषता है — वे एक राज्य में एक प्रयोग करते हैं, उसे परखते हैं, और फिर उसे एक राष्ट्रीय मॉडल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यही "राज्य-प्रायोगिक से राष्ट्रीय-मानकीकृत" की पद्धति आगे चलकर समान नागरिक संहिता जैसे विषयों में भी दोहराई जाने वाली थी, जहाँ उत्तराखंड एक प्रायोगिक भूमि बना।

संगठित अपराध नियंत्रण विधेयक की कथा भी इसी दूरदृष्टि की द्योतक है। निवारक-निरोध और गवाह-संरक्षण जैसी शक्तियाँ — जो शाह ने गुजरात में पुलिस को दीं — आधुनिक आंतरिक-सुरक्षा ढाँचे के अनिवार्य अंग हैं। एक गृह मंत्री जो साक्ष्य-प्रणाली और गवाह-संरक्षण की बारीकियों तक सोचता है, वह केवल एक प्रशासक नहीं, बल्कि एक विधायी वास्तुकार है। यह वही व्यवस्थित बुद्धि थी जो आगे चलकर अनुच्छेद 370 के निरसन की जटिल क़ानूनी रचना में, और तीन नए आपराधिक क़ानूनों के निर्माण में प्रकट होने वाली थी।

संस्था-निर्माण: फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय

फरवरी 2009 में, शाह ने गांधीनगर में **गुजरात फ़ॉरेंसिक साइंसेज़ यूनिवर्सिटी (जीएफएसयू)** का उद्घाटन किया — जो अपने शब्दों में, "फ़ॉरेंसिक, व्यवहारिक, साइबर-सुरक्षा, डिजिटल फ़ॉरेंसिक और संबद्ध विज्ञानों को समर्पित विश्व का प्रथम और एकमात्र विश्वविद्यालय" है। अक्टूबर 2020 में इसे राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित कर **राष्ट्रीय फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय** नाम दिया गया।

यह संस्था शाह की पद्धति का एक आदर्श उदाहरण है — एक स्थायी संस्था का निर्माण जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्तर पर दोहराई गई। 2022 तक वे यह दावा कर सकते थे कि देश भर के 16,390 पुलिस थाने सीसीटीएनएस (अपराध एवं आपराधिक ट्रैकिंग नेटवर्क और प्रणाली) पर जुड़ चुके हैं, और वे केंद्रीय एजेंसियों को इस मंच से एकीकृत करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयासरत थे।

एक विश्वविद्यालय की दूरदर्शिता

फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय की कल्पना ही शाह की दूरदृष्टि का असाधारण प्रमाण है। 2009 में, जब विश्व के अधिकांश देशों में फ़ॉरेंसिक विज्ञान कुछ चुनिंदा प्रयोगशालाओं और पुलिस-विभागों के भीतर एक सहायक शाखा-भर था, तब शाह ने इसे एक स्वतंत्र, समर्पित विश्वविद्यालय का दर्जा देने की कल्पना की। डिजिटल फ़ॉरेंसिक, साइबर-सुरक्षा और व्यवहारिक विज्ञान — ये वे क्षेत्र थे जिनकी अनिवार्यता को विश्व अगले दशक में ही पूरी तरह समझ पाने वाला था। इस अर्थ में, यह संस्था अपने समय से लगभग एक दशक आगे थी।

जब किसी राज्य का गृह मंत्री एक विश्वविद्यालय की नींव रखता है, तो वह संदेश स्पष्ट होता है: यहाँ सुरक्षा को एक आपातकालीन प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक-संस्थागत क्षमता के रूप में देखा जा रहा है। यह वही दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण की मानसिकता थी जो सरदार पटेल की उस परंपरा से मेल खाती है, जिसने स्वतंत्रता के तत्काल बाद अखिल भारतीय सेवाओं और प्रशासनिक संस्थाओं की नींव रखकर भविष्य के राष्ट्र की क्षमता का निर्माण किया था। पटेल ने प्रशासनिक इस्पात गढ़ा; शाह ने वैज्ञानिक-सुरक्षा का ढाँचा। दोनों ने वह अवसंरचना बनाई जो दिखाई नहीं देती, परंतु जिस पर राष्ट्र की दीर्घकालिक सामर्थ्य टिकी रहती है।

बारह विभागों का बोझ: एक परीक्षा

गृह राज्य मंत्री के रूप में शाह को एक साथ बारह से अधिक विभाग सौंपे जाना एक असाधारण निर्णय था। सामान्यतः इतने विभाग एक मंत्री को नहीं सौंपे जाते। यह मोदी के उस विश्वास का प्रमाण था कि शाह इस बोझ को सँभाल सकते हैं — और शाह की उस अद्वितीय परिश्रम-क्षमता का भी जो उन्हें अन्य राजनेताओं से अलग करती थी।

इन विभागों की विविधता उल्लेखनीय है — गृह से लेकर परिवहन तक, मद्य-निषेध से लेकर संसदीय कार्य तक। प्रत्येक विभाग की अपनी जटिलताएँ, अपने हितधारक, और अपनी चुनौतियाँ थीं। एक साथ इतने विविध क्षेत्रों का प्रबंधन एक ऐसा प्रशासनिक प्रशिक्षण था जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्तर पर अमूल्य सिद्ध हुआ। जब शाह आगे चलकर गृह मंत्रालय जैसे विशाल मंत्रालय का संचालन करेंगे, या सहकारिता जैसे विशाल क्षेत्र का पुनर्गठन करेंगे, तो वे उसी बहु-विभागीय प्रबंधन के अनुभव का लाभ उठाएँगे जो उन्होंने गुजरात में अर्जित किया था।

यह बहु-विभागीय बोझ शाह के व्यक्तित्व के एक मूल गुण को भी उजागर करता है — विवरणों के प्रति उनका अनथक ध्यान। बारह विभागों को एक साथ सँभालना तभी संभव है जब कोई व्यक्ति प्रत्येक विभाग की सूक्ष्मतम बारीकियों को अपने मस्तिष्क में सहेज सके। एक कनिष्ठ सहयोगी की प्रसिद्ध टिप्पणी कि शाह "आठ नहीं, अस्सी समितियों को सँभाल सकते हैं" — इसी गुजरात-कालीन परीक्षा में उत्पन्न हुई थी। यह परीक्षा एक प्रकार से उस राष्ट्रीय भूमिका का पूर्वाभ्यास थी जो आगे प्रतीक्षारत थी।

सीसीटीएनएस: पुलिस का डिजिटल एकीकरण

गुजरात में शाह के संस्था-निर्माण का एक और आयाम था पुलिस-तंत्र का आधुनिकीकरण। आगे चलकर, राष्ट्रीय स्तर पर, यह दृष्टि अपराध एवं आपराधिक ट्रैकिंग नेटवर्क और प्रणाली (सीसीटीएनएस) के रूप में फलीभूत हुई — एक ऐसा डिजिटल मंच जो देश भर के 16,390 पुलिस थानों को एक नेटवर्क में जोड़ता है।

यह पहल शाह की उस मूल पद्धति का उदाहरण है जो हमने पहले देखी — संस्थाओं को आँकड़ों से जोड़ना। जैसे उन्होंने भाजपा के कार्यकर्ताओं को "क्वेरी-

योग्य" डेटा में बदला, वैसे ही उन्होंने पुलिस-तंत्र को एक एकीकृत, खोज-योग्य डिजिटल नेटवर्क में बदला। यह आधुनिक राष्ट्र-निर्माण का एक मौन किंतु शक्तिशाली रूप था — वह अवसंरचना जो दिखाई नहीं देती, परंतु जिस पर राज्य की क्षमता टिकी होती है।

इस डिजिटल एकीकरण का दार्शनिक महत्व यह है कि यह राज्य की स्मृति को संस्थागत बनाता है। एक ऐसे देश में जहाँ एक राज्य में दर्ज अपराधी दूसरे राज्य में सहजता से अदृश्य हो सकता था, सीसीटीएनएस ने एक राष्ट्रीय स्मृति-जाल बुना। शाह का यह विश्वास कि केंद्रीय एजेंसियों को भी इसी मंच से जोड़ा जाना चाहिए, उसी एकीकरणकारी मानसिकता की अभिव्यक्ति था जो उनके समूचे राजनीतिक जीवन का सूत्र है — खंडित को एकीकृत करना, बिखरे को जोड़ना, और राष्ट्र की क्षमता को एक सुसंगत समग्रता में ढालना।

राजनीतिक वनवास और वापसी

यह दशक अचानक समाप्त हुआ। 25 जुलाई 2010 को, शाह को सोहराबुद्दीन शेख़ मुठभेड़ मामले में गिरफ़्तार किया गया। उन्हें मंत्री-पद से त्यागपत्र देना पड़ा, और वस्तुतः 2010 से 2012 तक गुजरात से बाहर रहना पड़ा। दिसंबर 2014 में, एक विशेष सीबीआई न्यायालय ने उन्हें "साक्ष्य की कमी और आरोपों के राजनीतिक स्वरूप" का हवाला देते हुए दोषमुक्त कर दिया।

शाह के समर्थक इस प्रसंग को एक राजनीतिक रूप से प्रेरित मामले के रूप में देखते हैं जिसने उन्हें ठीक इसलिए निशाना बनाया क्योंकि वे एक उभरते हुए संगठनकर्ता थे जिनसे राजनीतिक प्रतिष्ठान भयभीत था। न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति इस दृष्टिकोण को बल देती है। और यह वनवास का काल, विडंबनापूर्ण रूप से, वही अवधि बना जिसमें शाह ने वैचारिक अध्ययन और राजनीतिक पुनर्संरचना की — "पहले संगठन का निर्माण" के अपने सिद्धांत को और गहरा किया। जो दो वर्ष एक संकट प्रतीत होते थे, वे वस्तुतः उस राष्ट्रीय भूमिका की तैयारी का काल बने जो आगे प्रतीक्षारत थी।

अडिगता का प्रथम पाठ

यह वनवास का काल शाह के व्यक्तित्व की उस केंद्रीय विशेषता का प्रथम सार्वजनिक परीक्षण था जिसे यह पुस्तक "लौह-गुण" कहती है — विपरीत परिस्थिति में अविचलित रहना। 2012 में, अपने ऊपर लगे आरोपों के संदर्भ में उन्होंने जो शब्द कहे, वे उनकी मनोदशा का सार प्रस्तुत करते हैं: "मैं किसी से नहीं डरता। हम क़ानूनी लड़ाई लड़ेंगे, और उन लोगों को उजागर करेंगे जिन्होंने न्यायालय में हमारे साथ अन्याय करने का प्रयास किया।" यह वही दृढ़ता थी जो आगे चलकर आलोचना की आँधी के बीच अनुच्छेद 370 के निरसन में, और नागरिकता संशोधन अधिनियम पर अडिग रहने में प्रकट होने वाली थी।

इस काल का एक और मार्मिक पक्ष यह था कि 8 जून 2010 को — गिरफ़्तारी से ठीक पहले के सप्ताहों में — उनकी माता कुसुमबेन शाह का निधन हो गया था, जो परिवार में धार्मिक अनुशासन की संरक्षिका थीं। व्यक्तिगत शोक और राजनीतिक संकट के इस दोहरे भार के बीच भी शाह ने अपनी मनोवैज्ञानिक स्थिरता नहीं खोई। यह वही वैष्णव-संस्कारित धैर्य था, वही शाखा-प्रशिक्षित संयम, जिसने उन्हें इस अग्निपरीक्षा से और अधिक दृढ़ होकर निकलने में सहायता की। समर्थकों की दृष्टि में, यह काल शाह के लिए वही था जो किसी इस्पात के लिए तपन — एक ऐसी प्रक्रिया जो धातु को कमज़ोर नहीं, बल्कि और कठोर बनाती है।

मोदी-शाह की जोड़ी: एक प्रशासनिक प्रयोगशाला

गुजरात के इस दशक का एक और स्थायी परिणाम था मोदी और शाह की उस प्रशासनिक जोड़ी का परिपक्व होना जो आगे चलकर राष्ट्रीय राजनीति को परिभाषित करने वाली थी। 1982 में आरंभ हुई यह मित्रता अब एक कार्य-विभाजन में ढल चुकी थी — मुख्यमंत्री मोदी की दूरदृष्टि और जन-संवाद, और गृह राज्य मंत्री शाह का संगठन, विधायी कौशल और निर्मम क्रियान्वयन। एक गुजराती राजनेता ने इसे इन शब्दों में रेखांकित किया कि मोदी ने "समस्त कठिन कार्य शाह को सौंप दिए, जिन्हें उन्होंने दृढ़ता से क्रियान्वित किया।"

यह जोड़ी एक प्रकार से गुजरात में ही परीक्षित और सिद्ध हुई। यहीं उन्होंने सीखा कि किस प्रकार एक नेता की दूरदृष्टि और दूसरे की कार्यान्वयन-क्षमता मिलकर एक

ऐसी राजनीतिक शक्ति बना सकती है जो किसी एकल व्यक्तित्व से कहीं अधिक प्रभावी हो। गुजरात की यह प्रशासनिक प्रयोगशाला, इस अर्थ में, केवल नीतियों और संस्थाओं की प्रयोगशाला नहीं थी — यह उस साझेदारी की भी प्रयोगशाला थी जो आगे चलकर अनुच्छेद 370 जैसे ऐतिहासिक निर्णयों को संभव बनाने वाली थी।

गुजरात की यह प्रयोगशाला — विधायी कौशल, संस्था-निर्माण, और संकट में भी अडिगता — आगे चलकर एक बहुत बड़े मंच पर दोहराई जाने वाली थी। और वह मंच था: भारतीय जनता पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष-पद।

अध्याय 7

भाजपा का पुनर्निर्माण: विश्व का सबसे बड़ा दल

9 जुलाई 2014 को जब अमित शाह भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष चुने गए, तब पार्टी ने अभी-अभी 282 लोकसभा सीटें जीती थीं — तीन दशकों में अपना पहला स्पष्ट संसदीय बहुमत। परंतु शाह एक विजयी दर्शक के रूप में नहीं आए थे: 2014 का वह अभियान पहले से ही उनकी ही कारीगरी था। वे एक स्पष्ट आदेश के साथ आए थे — भाजपा को "विश्व का सबसे बड़ा राजनीतिक दल" बनाने का, एक स्थायी रूप से संस्थागत कल्याणकारी और चुनावी जीव के रूप में, न कि केवल एक विजय का उत्तराधिकारी बनने का।

विजय के क्षण में निर्माण का संकल्प

राजनीति में सबसे कठिन क्षण प्रायः विजय का क्षण होता है। पराजय संगठन को सचेत करती है; विजय उसे शिथिल कर देती है। 2014 की ऐतिहासिक विजय के पश्चात किसी भी सामान्य संगठनकर्ता के लिए यह स्वाभाविक प्रलोभन होता कि वह उपलब्धि का आनंद ले और शिथिल पड़ जाए। शाह ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने विजय के उसी क्षण को संगठन-विस्तार का सबसे उपयुक्त अवसर माना — क्योंकि यही वह क्षण था जब समर्थन अपने चरम पर था और उसे स्थायी सदस्यता में परिवर्तित किया जा सकता था।

यह दृष्टिकोण शाह की उस मूल मान्यता से उपजा था कि चुनावी विजय एक गंतव्य नहीं, एक संसाधन है — एक ऐसी पूँजी जिसे संस्थागत क्षमता में निवेश किया जाना चाहिए। एक करिश्माई नेता की लहर पर सवार होकर एक बार जीतना सरल है; उस लहर को एक स्थायी, स्व-नवीकरणीय संगठनात्मक मशीन में बदल देना — यही वह कार्य था जिसे शाह ने अपने हाथ में लिया। यही वह "लंबी पारी" का दर्शन था जो उनके समूचे व्यक्तित्व का सूत्र है।

11 करोड़ सदस्यों से विश्व के सबसे बड़े दल तक

शाह का पहला निर्णायक कार्य एक **सदस्यता अभियान** था जिसने औद्योगिक पैमाने पर नए शुल्क-भुगतानकर्ता सदस्यों को जोड़ा। जुलाई 2015 तक, भाजपा ने 11 करोड़ (110 मिलियन) सदस्यों के नामांकन का दावा किया — एक ऐसी संख्या जो अधिकांश देशों की जनसंख्या से बड़ी थी। मार्च 2015 तक पार्टी 100 मिलियन सदस्यों को पार कर चुकी थी, और यह विस्तार शाह के कार्यकाल भर चलता रहा, अंततः भाजपा को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (99 मिलियन) से भी बड़ा बनाते हुए — बाद के दावों के अनुसार लगभग 180 मिलियन तक पहुँचते हुए। चाहे लेखापरीक्षित संख्या जो भी रही हो, इस अभियान का प्रभाव यह था कि निष्क्रिय समर्थकों को शुल्क-भुगतानकर्ता, आँकड़ा-चिह्नित पार्टी कार्यकर्ताओं में बदल दिया गया।

इस आँकड़े की विशालता को समझने के लिए एक तुलना उपयोगी है। एक राजनीतिक दल का चीन की सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी से बड़ा हो जाना — एक ऐसे राष्ट्र की पार्टी से जिसकी जनसंख्या भारत के समकक्ष है — यह अपने आप में एक संगठनात्मक उपलब्धि थी जिसकी विश्व-इतिहास में कोई समानांतर मिसाल नहीं। परंतु शाह के लिए यह संख्या आत्म-संतुष्टि का विषय नहीं, बल्कि एक उपकरण थी। प्रत्येक सदस्य एक संपर्क-बिंदु था, एक संभावित बूथ-कार्यकर्ता, एक ऐसी इकाई जिसे आँकड़े में दर्ज किया जा सकता था और जिससे संपर्क बनाए रखा जा सकता था। यह वही बनिया-लेखा-जोखा मानसिकता थी — जहाँ प्रत्येक इकाई का हिसाब रखा जाता है — जो अब राष्ट्रीय राजनीति के पैमाने पर लागू हो रही थी।

सूचियों को संगठन में बदलना

शाह के संरचनात्मक नवाचार जानबूझकर शब्दावली में साधारण किंतु प्रभाव में क्रांतिकारी थे:

- **हर ज़िले में ज़िला कार्यालय** — किराये के अस्थायी कमरों के स्थान पर वेतनभोगी कर्मचारियों वाले मानकीकृत पार्टी मुख्यालय।
- **19 कार्यात्मक विभाग** — संगठन, प्रशिक्षण, आईटी, क़ानूनी, मीडिया जैसी ऊर्ध्वाधर विशेषज्ञता।

- **पार्टी दस्तावेज़ों का डिजिटलीकरण** — ऑनलाइन सदस्यता और बूथ-कार्यकर्ता ऐप, जिसने पार्टी को एक प्रौद्योगिकी-फ़र्म की तरह "क्वेरी-योग्य" बना दिया।
- **पंडित दीनदयाल उपाध्याय विस्तारक योजना** — प्रशिक्षित भाजपा कार्यकर्ताओं की दो-वर्षीय तैनाती, जो संघ-प्रशिक्षित कैडर को सीधे चुनावी रणभूमि में उतारती थी।
- **हर बूथ के लिए 7–10 सदस्यीय बूथ प्रबंधन समितियाँ** — "पन्ना प्रमुख" प्रणाली के साथ, जिसमें प्रत्येक कार्यकर्ता मतदाता-सूची के एक "पन्ने" (लगभग 200–300 मतदाताओं) का प्रभारी।

इनमें से प्रत्येक सुधार भारतीय दलगत राजनीति की एक ढीली परंपरा को — एक करिश्मा-आधारित रैली, एक हस्तलिखित मतदाता-सूची, एक शुल्क-भुगतानकर्ता कार्यकर्ता — एक मानकीकृत, निरीक्षण-योग्य, और दोहराई जा सकने वाली प्रक्रिया में बदल देता था।

स्थायी अवसंरचना का निर्माण

इन सुधारों में सबसे कम चर्चित किंतु संभवतः सबसे स्थायी प्रभाव वाला सुधार था — हर ज़िले में एक स्थायी पार्टी कार्यालय। यह एक प्रतीत होता साधारण निर्णय था, परंतु इसके निहितार्थ गहरे थे। एक किराये के कमरे में चलने वाला अस्थायी कार्यालय हर चुनाव के बाद बिखर सकता है; एक स्थायी भवन, वेतनभोगी कर्मचारियों के साथ, संगठन को एक स्थायी संस्थागत अस्तित्व प्रदान करता है। यह ठीक वही पद्धति थी जो शाह ने गुजरात में फ़ॉरेंसिक विश्वविद्यालय के निर्माण में अपनाई थी — एक स्थायी संस्था खड़ी करना जो नेतृत्व के व्यक्तिगत करिश्मे से स्वतंत्र होकर भी जीवित रहे।

विस्तारक योजना का महत्व भी इसी संस्थागत स्थायित्व में निहित था। संघ-प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को दो वर्षों के लिए ज़मीनी राजनीतिक कार्य में तैनात करना — यह एक प्रकार से वैचारिक प्रतिबद्धता और चुनावी मशीनरी का संगम था। इन विस्तारकों ने उन क्षेत्रों में भी संगठन की जड़ें जमाईं जहाँ भाजपा की पारंपरिक

उपस्थिति नगण्य थी। यही योजना आगे चलकर पूर्वोत्तर जैसे क्षेत्रों में चमत्कारी परिणाम देने वाली थी।

राज्य-दर-राज्य विजय

शाह का अध्यक्ष-काल राज्य-विधानसभा विजयों की एक अभूतपूर्व शृंखला है: - **2014**: महाराष्ट्र, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, झारखंड। - **2016**: असम — पूर्वोत्तर में पहली भाजपा सरकार। - **2017**: उत्तर प्रदेश (403 में से 312), उत्तराखंड, गुजरात, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश। - **2018**: त्रिपुरा में दो-तिहाई बहुमत — 25 वर्ष पुराने वाम-शासन का अंत — और नागालैंड तथा मेघालय में सरकार।

त्रिपुरा का परिणाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शाह के कार्यकाल से पहले भाजपा की वहाँ कोई उल्लेखनीय उपस्थिति नहीं थी; सीपीआई(एम) 25 वर्षों से शासन कर रही थी। शाह ने व्यक्तिगत रूप से संगठनात्मक संसाधन लगाए — वेबटीवी वैन, ज़िलों में तैनात संघ-प्रशिक्षित विस्तारक, और एक प्रत्यक्ष द्वार-से-द्वार कार्यक्रम। "भाजपा का पूर्वोत्तर में कोई भविष्य नहीं" — यह दशकों पुरानी धारणा एक ही चुनावी चक्र में उलट दी गई।

असम: पूर्वोत्तर का प्रवेश-द्वार

राज्य-विजयों की इस शृंखला में 2016 का असम एक विशेष स्थान रखता है, क्योंकि यह पूर्वोत्तर में भाजपा की पहली सरकार थी — एक ऐसे क्षेत्र में प्रथम पैठ जिसे दशकों से कांग्रेस और क्षेत्रीय दलों का अभेद्य गढ़ माना जाता था। असम की विजय केवल एक राज्य का अधिग्रहण नहीं थी; यह एक संपूर्ण भौगोलिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश का द्वार थी। शाह ने इसे एक रणनीतिक धुरी के रूप में देखा — असम से प्राप्त संगठनात्मक आधार और राजनीतिक विश्वसनीयता ने आगे चलकर पूरे पूर्वोत्तर में भाजपा और उसके सहयोगियों के विस्तार को संभव बनाया।

यह क्षेत्रीय विस्तार शाह की उस भौगोलिक कल्पना का प्रमाण था जो किसी क्षेत्र को "अप्राप्य" मानकर त्याग देने से इनकार करती थी। जहाँ अन्य रणनीतिकार संसाधनों को अपने पारंपरिक गढ़ों में केंद्रित करते, वहाँ शाह ने जानबूझकर उन क्षेत्रों

में निवेश किया जहाँ पार्टी कमज़ोर थी। यह एक दीर्घकालिक निवेश था, जिसका प्रतिफल वर्षों बाद मिलने वाला था — और मिला भी।

पन्ना प्रमुख: लोकतंत्र की सूक्ष्मतम इकाई

शाह के संगठनात्मक नवाचारों में सबसे सूक्ष्म और सबसे क्रांतिकारी था — पन्ना प्रमुख प्रणाली। इसका विचार सरल किंतु गहरा था: मतदाता-सूची का हर "पन्ना" (पृष्ठ) लगभग 200–300 मतदाताओं को सूचीबद्ध करता है। शाह ने प्रत्येक पन्ने के लिए एक समर्पित कार्यकर्ता — पन्ना प्रमुख — नियुक्त करने की व्यवस्था की, जिसका कार्य उस पन्ने के हर मतदाता को नाम से जानना, उससे संपर्क बनाए रखना, और मतदान के दिन उसे केंद्र तक पहुँचाना था।

इस प्रणाली का दार्शनिक आधार एक गहन अंतर्दृष्टि पर टिका है: अधिकांश मतदाता किसी उम्मीदवार या बड़े नेता से कभी नहीं मिलते। जिन लोगों से वे मिलते हैं — अपने मोहल्ले के, अपने पन्ने के कार्यकर्ता — वही उनके लिए "पार्टी" होते हैं। इस प्रकार पन्ना प्रमुख प्रणाली ने चुनाव को दूर के करिश्मे से निकालकर निकटतम मानवीय संपर्क में बदल दिया।

केवल उत्तर प्रदेश में ही लगभग 1,40,000 बूथों के लिए 7–10 सदस्यीय प्रबंधन समितियाँ बनाई गईं, जिनका नेतृत्व पन्ना प्रमुख करते थे। यह संगठनात्मक सूक्ष्मता का एक अभूतपूर्व स्तर था — और यह ठीक उसी बनिया-लेखा-जोखा मानसिकता का राजनीतिक रूपांतरण था जो शाह को विरासत में मिली थी, जहाँ हर इकाई का हिसाब रखा जाता है।

पन्ना प्रमुख प्रणाली का एक और आयाम था जिसे प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है — यह जवाबदेही की एक शृंखला बनाती थी। प्रत्येक पन्ना प्रमुख अपने 200–300 मतदाताओं के लिए उत्तरदायी था; प्रत्येक बूथ समिति अपने बूथ के लिए; प्रत्येक स्तर ऊपर के स्तर को रिपोर्ट करता था। इस प्रकार एक करोड़ों मतदाताओं वाले देश को छोटी-छोटी, मापने योग्य, जवाबदेह इकाइयों में विभाजित कर दिया गया। यह वही "विभाजित करो और सँभालो" की प्रशासनिक प्रतिभा थी जिसने एक विशाल, अनियंत्रित-प्रतीत-होते लोकतंत्र को एक सुसंगठित, क्रियान्वयन-योग्य प्रणाली में बदल दिया।

त्रिपुरा: एक असंभव विजय

शाह की संगठन-क्षमता का सबसे नाटकीय प्रमाण त्रिपुरा था। 2018 से पहले, इस राज्य में भाजपा की कोई उल्लेखनीय उपस्थिति नहीं थी; सीपीआई(एम) 25 वर्षों से निर्बाध शासन कर रही थी। राजनीतिक विश्लेषकों ने भाजपा को वहाँ "अप्राप्य" मान लिया था।

शाह ने इस धारणा को व्यक्तिगत रूप से चुनौती दी। उन्होंने वेबटीवी वैन भेजीं, संघ-प्रशिक्षित विस्तारकों को ज़िलों में तैनात किया, और एक प्रत्यक्ष द्वार-से-द्वार कार्यक्रम चलाया। परिणाम चौंकाने वाला था — भाजपा ने अपने दम पर दो-तिहाई सीटें जीतीं, और साथ ही नागालैंड तथा मेघालय में भी सरकार में शामिल हुई। एक ही चुनावी चक्र में, पूर्वोत्तर — जो दशकों से विपक्ष का गढ़ माना जाता था — भाजपा का गढ़ बन गया।

त्रिपुरा की यह विजय शाह की उस "लंबी पारी" और धैर्यपूर्ण संगठन-निर्माण की पद्धति का प्रमाण थी जिसने असंभव को संभव बनाया। और यह उसी दीर्घकालिक दृष्टि का एक और रूप था जो आगे चलकर राष्ट्र-निर्माण के बड़े निर्णयों में प्रकट हुई।

त्रिपुरा एक वैचारिक विजय भी थी। एक ऐसे राज्य में जो भारत में मार्क्सवादी राजनीति का अंतिम दुर्ग बन गया था, भाजपा का विजयी होना केवल एक सीट-गणित का परिणाम नहीं था, बल्कि एक वैचारिक संक्रमण की घोषणा थी। शाह के लिए यह विशेष रूप से संतोषजनक रहा होगा — क्योंकि यह उस वैचारिक संघर्ष की परिणति थी जो उन्होंने अपने एबीवीपी के दिनों से, वाम-प्रभुत्व वाली छात्र-राजनीति के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, आरंभ किया था। दशकों का धैर्य अंततः एक ऐतिहासिक विजय में फलीभूत हुआ था।

2019: 303 सीटें

मई 2019 में भाजपा ने 303 लोकसभा सीटें जीतीं — 1984 के बाद किसी एक दल के लिए सबसे बड़ा जनादेश। जैसा कि भाजपा के एक पार्षद ने इस यात्रा का सार प्रस्तुत किया: "यह मोदी और शाह के कारण ही है कि भाजपा *1984* के चुनाव में दो सीटों से *2019* में *303* सीटों तक पहुँची।"

दो सीटों से 303 तक की यह यात्रा — यह केवल एक चुनावी आँकड़ा नहीं, बल्कि उस संगठनात्मक धैर्य और अनुशासन का प्रमाण है जो शाह के समूचे व्यक्तित्व की पहचान है। और यही संगठनात्मक शक्ति वह आधार बनी जिस पर खड़े होकर मोदी सरकार वे ऐतिहासिक निर्णय ले सकी जिन्हें यह पुस्तक आगे विस्तार से देखेगी — जिनमें सबसे पहला और सबसे बड़ा था: अनुच्छेद 370 का निरसन।

दो सीटों से 303 तक: एक यात्रा का अर्थ

इस यात्रा की गहराई को समझने के लिए हमें 1984 के उस क्षण को स्मरण करना होगा जब भाजपा, अपने तत्कालीन रूप में, लोकसभा में केवल दो सीटों तक सिमट गई थी। उस समय अनेक राजनीतिक टीकाकारों ने इस दल के भविष्य को संदिग्ध माना था। पैंतीस वर्षों में वही दल विश्व का सबसे बड़ा राजनीतिक संगठन बन गया, और संसद में 303 सीटों के साथ एक प्रचंड बहुमत का स्वामी। यह परिवर्तन किसी एक चुनावी लहर का परिणाम नहीं था; यह दशकों के धैर्यपूर्ण संगठन-निर्माण का संचयी प्रतिफल था।

शाह की भूमिका इस यात्रा के अंतिम और निर्णायक चरण में थी — वह चरण जिसमें एक प्रतिस्पर्धी दल एक प्रभुत्वशाली दल में रूपांतरित हुआ। उन्होंने भाजपा को एक ऐसी मशीन में बदल दिया जो केवल चुनाव जीतने के लिए नहीं, बल्कि स्थायी रूप से जीतते रहने के लिए अभिकल्पित थी। यह वही संस्थागत स्थायित्व था जो पटेल ने स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक संस्थाओं के निर्माण में चाहा था — एक ऐसा ढाँचा जो व्यक्तियों से बड़ा हो, जो आने वाली पीढ़ियों तक राष्ट्र की सेवा करता रहे।

एक स्थायी संगठनात्मक विरासत

शाह के अध्यक्ष-काल की सबसे स्थायी देन शायद किसी एक चुनावी विजय में नहीं, बल्कि उस संगठनात्मक संस्कृति में निहित है जो उन्होंने भाजपा में रोपी। उन्होंने पार्टी को एक ऐसी मानसिकता दी जिसमें कोई चुनाव — चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो — हल्के में नहीं लिया जाता, और कोई क्षेत्र — चाहे वह कितना भी प्रतिकूल क्यों न हो — “अप्राप्य” नहीं माना जाता। यह सतत-अभियान की संस्कृति थी,

जिसमें संगठन एक चुनाव के बाद विश्राम करने के बजाय अगले के लिए तत्काल जुट जाता।

यह संस्कृति एक प्रकार से उस संघ-प्रशिक्षित अनुशासन का राजनीतिक रूपांतरण थी जो शाह को किशोरावस्था से प्राप्त हुआ था — सतत परिश्रम, सूक्ष्म संगठन, और वैचारिक प्रतिबद्धता। जब वे 2020 में अध्यक्ष-पद से गृह मंत्रालय की ओर बढ़े, तो वे पीछे एक ऐसा संगठनात्मक ढाँचा छोड़ गए जो उनके व्यक्तिगत नेतृत्व पर निर्भर नहीं था, बल्कि स्वयं में स्व-संचालित और स्थायी था। यही किसी सच्चे संस्था-निर्माता की कसौटी होती है — कि उसका निर्मित ढाँचा उसकी अनुपस्थिति में भी फलता-फूलता रहे।

परंतु इससे पहले कि हम उस ऐतिहासिक क्षण तक पहुँचें, उस व्यक्तित्व की एक झलक आवश्यक है जिसने इस समूचे संगठनात्मक चमत्कार को संभव बनाया — वह “आधुनिक चाणक्य” जिसकी रणनीतिक प्रतिभा ने भारतीय राजनीति को नए सिरे से परिभाषित किया।

अध्याय 8

आधुनिक चाणक्य: बूथ से राष्ट्र तक

भारतीय राजनीतिक पत्रकारिता में एक उपमा बार-बार लौटती है — "आधुनिक चाणक्य"। यह उपमा अमित शाह के लिए इतनी बार प्रयुक्त हुई है कि वह लगभग एक स्थायी विशेषण बन गई है। परंतु इस उपमा के पीछे एक ठोस पद्धति है, एक ऐसी कार्यशैली जिसे समझे बिना शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन को समझना अधूरा रहेगा।

"चाणक्य से तीक्ष्ण मस्तिष्क"

इस उपमा का सबसे मुखर रूप एक पूर्व भाजपा राजनेता यतिन ओझा से आया, जिन्होंने शाह के साथ दशकों तक काम किया था: "शाह को ईश्वर का एक वरदान प्राप्त है — चाणक्य से भी तीक्ष्ण मस्तिष्क।" प्राचीन रणनीतिकार चाणक्य, जिन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य के अधीन भारत को एक किया, के साथ यह तुलना ओझा के अनुसार एक प्रशंसा भी है और एक स्वीकृति भी — कि भारतीय राजनीतिक साहित्य के पास शाह की कार्यशैली के लिए कोई अन्य संदर्भ-बिंदु नहीं है।

इस तुलना का एक गहरा निहितार्थ है। चाणक्य केवल एक रणनीतिकार नहीं थे; वे एक राष्ट्र-निर्माता थे, जिन्होंने एक बिखरे उपमहाद्वीप को एक एकीकृत मौर्य साम्राज्य में ढाला। जब शाह की तुलना चाणक्य से की जाती है, तो वह तुलना केवल उनकी चुनावी कुशलता तक सीमित नहीं रहती — वह उस व्यापक राष्ट्र-निर्माण की महत्वाकांक्षा को भी संकेतित करती है जो उनके राजनीतिक जीवन का केंद्र है। और यह तुलना उस पटेल-परंपरा से भी मेल खाती है जिसे यह पुस्तक रेखांकित करती है — क्योंकि सरदार पटेल को भी प्रायः "आधुनिक चाणक्य" कहकर संबोधित किया गया था, उस व्यक्ति के रूप में जिसने रियासतों के बिखराव को एक एकीकृत गणराज्य में बदला।

उत्तर प्रदेश का चमत्कार: बूथ का गणित

शाह की पद्धति का कोई उदाहरण उत्तर प्रदेश की 2014 की विजय से बेहतर नहीं है। यह वह राज्य था जिसने दो दशकों तक भाजपा को पराजित किया था। शाह ने एक चार-स्तरीय रणनीति अपनाई — सीट, क्लस्टर, ज़ोन और राज्य। उन्होंने उत्तर प्रदेश की 80 लोकसभा सीटों को 3 से 5 सीटों के 21 क्लस्टरों में बाँटा, जो 8 ज़ोन में संगठित थे।

प्रत्येक क्लस्टर के लिए उन्होंने बूथ-गणित निकाला: प्रति मतदान-केंद्र 10 मतदाताओं को लाने के लिए एक बोलेरो वाहन का लक्ष्य। उत्तर प्रदेश में एक लाख से अधिक बूथों के साथ, यह गणित एक पूर्व-परिकलित भीड़-संगठन प्रणाली में बदल गया जिसने संगठित, दोहराई जा सकने वाली उपस्थिति के माध्यम से एक दृश्यमान "मोदी लहर" उत्पन्न की।

"डार्क ज़ोन" (ऐसे क्षेत्र जहाँ टीवी या समाचार-पत्र की पहुँच नहीं थी) में प्रवेश के लिए, शाह ने एक 16-मिनट का अभियान-वीडियो, 450 जीपीएस-युक्त वैन, और 800 पूर्णकालिक स्वयंसेवक तैनात किए। रैलियाँ 175 किलोमीटर की त्रिज्या से भीड़ खींचने के लिए डिज़ाइन की गईं, और लखनऊ के मुख्यालय में एक कॉल-सेंटर ज़मीनी रिपोर्टों के विरुद्ध उपस्थिति-संख्याओं का सत्यापन करता था। उनकी क्षेत्र-स्तरीय रणनीति में हर गाँव के दूसरे-सबसे-प्रभावशाली नेता को शामिल करने की भर्ती-नीति भी शामिल थी, जिसने राज्य भर में 8,000 ग्रामीण नेताओं का एक नेटवर्क खड़ा किया।

परिणाम: भाजपा और सहयोगियों ने उत्तर प्रदेश की 80 में से 73 लोकसभा सीटें जीतीं — दो दशकों के सपा-बसपा प्रभुत्व का लगभग पूर्ण उलटाव।

शाह के अपने शब्दों में: "विवरणों का सत्यापन ज़मीनी वास्तविकता का सटीक आकलन प्राप्त करने के लिए आवश्यक था, ताकि हम अपने अभियान को सूक्ष्मता से समायोजित कर सकें।" और इस समूची रणनीति में एक व्यक्तिगत विनम्रता भी थी — उन्होंने कहा कि उन्होंने "अपना अहंकार एक ओर रखने" का निर्णय किया।

सामाजिक अंकगणित: एक और परत

बूथ-गणित की इस कथा में एक और परत थी जिसे प्रायः अनदेखा किया जाता है — सामाजिक अंकगणित की सूक्ष्मता। उत्तर प्रदेश जैसे जाति-जटिल राज्य में, केवल लॉजिस्टिक संगठन पर्याप्त नहीं था; उम्मीदवारों के चयन में भी सामाजिक संतुलन साधना आवश्यक था। शाह ने इस आयाम को भी उतनी ही गणितीय परिशुद्धता से सँभाला जितनी उन्होंने बोलेरो-वैन की गणना में लगाई थी। 80 लोकसभा सीटों के टिकट-वितरण में उन्होंने एक सावधानीपूर्वक सामाजिक संतुलन बनाया — पिछड़े वर्गों, ब्राह्मणों और ठाकुरों के साथ-साथ छोटे, प्रायः उपेक्षित समुदायों — निषाद, बिंद, कुशवाहा — पर विशेष ध्यान केंद्रित किया।

यह सामाजिक अंकगणित शाह की पद्धति का एक मूल सिद्धांत प्रकट करता है: कोई भी समुदाय इतना छोटा नहीं कि उसकी उपेक्षा की जा सके और कोई भी समुदाय इतना बड़ा नहीं कि उसे हल्के में लिया जा सके। यही सूक्ष्म, सर्वसमावेशी अंकगणित उस बनिया-वैष्णव लेखा-जोखा परंपरा की प्रतिध्वनि था जिसमें प्रत्येक खाते का, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, हिसाब रखा जाता है।

“डिटेल्स मैन”: सूक्ष्म-प्रबंधन की कला

शाह के सहयोगियों द्वारा सबसे अधिक प्रयुक्त वाक्यांश है — “डिटेल्स मैन”, अर्थात् विवरणों का व्यक्ति। उनके एक मित्र और अहमदाबाद के पार्षद देवांग दानी ने 2024 की एक प्रसिद्ध प्रोफ़ाइल में सबसे अधिक उद्धृत पंक्ति दी: “चाहे ग्राम पंचायत हो या संसद, कोई भी चुनाव बहुत छोटा नहीं होता। अमितभाई के लिए, हर युद्ध जीता जाना चाहिए।”

यह वाक्य शाह की कार्यशैली का सार है। जिसे हम अमूर्त रूप से “आँकड़ा-संचालित संगठन” कहते हैं — मतदाता-सूचियाँ, बूथ-स्तरीकरण, जाति-अंकगणित, लाभार्थी-पहचान — उसे शाह उन शब्दों के फ़ैशन में आने से बहुत पहले ही लागू कर रहे थे।

बीबीसी की एक रणनीतिक प्रोफ़ाइल ने उन्हें “देश का दूसरा सबसे शक्तिशाली व्यक्ति” और “वह विवरणों का व्यक्ति जो काम पूरा करता है” तथा “एक उत्कृष्ट संगठनकर्ता और अभियान-रणनीतिकार” के रूप में चित्रित किया। यह तीनों वर्णन

एक ही सत्य के तीन पहलू हैं — कि शाह की शक्ति का स्रोत कोई आकस्मिक करिश्मा नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित, परिश्रमी, विवरण-केंद्रित कार्यशैली है।

"रोड रोलर": एक रूपक का अर्थ

शाह के लिए प्रयुक्त एक और रूपक है — "रोड रोलर", वह यंत्र जो मार्ग की बाधाओं को समतल कर देता है। यह रूपक उनकी कार्यशैली के एक महत्वपूर्ण पहलू को उजागर करता है: एक बार लक्ष्य निर्धारित हो जाने पर, शाह उसकी ओर अविचल रूप से बढ़ते हैं, बाधाओं को एक-एक करके हटाते हुए।

यह "रोड रोलर" गुण ही आलोचकों के लिए भय का स्रोत है और समर्थकों के लिए प्रशंसा का। परंतु दोनों एक ही तथ्य पर सहमत हैं: शाह की क्रियान्वयन-क्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता। जब उन्होंने अनुच्छेद 370 के निरसन का संकल्प किया, तो उन्होंने हर क़ानूनी, संवैधानिक और राजनीतिक बाधा को धैर्यपूर्वक और व्यवस्थित ढंग से हटाया — एक रोड रोलर की तरह, जो धीमा किंतु अप्रतिरोध्य है।

इस रूपक का एक पूरक रूप भी है, जो मोदी और शाह की जोड़ी को परिभाषित करता है — "राम और लक्ष्मण" की उपमा, जिसमें मोदी "चेहरा" हैं और शाह वह "रोड रोलर जो बाधाओं को समतल कर देता है।" यह विभाजन-श्रम एक संयोग नहीं, बल्कि एक सुविचारित साझेदारी का परिणाम है — एक चार-दशक पुरानी मित्रता और विश्वास की, जो 1982 में अहमदाबाद के संघ-वृत्तों में आरंभ हुई थी। एक की दूरदृष्टि और जन-संवाद, दूसरे का संगठन और क्रियान्वयन — यही वह समीकरण है जिसने भारतीय राजनीति को पुनर्परिभाषित किया।

आँकड़ों का अनुशासन

"आधुनिक चाणक्य" की उपमा का एक तकनीकी आयाम भी है — आँकड़ों के प्रति शाह का अनुशासन। बहुत पहले, जब "डेटा-संचालित राजनीति" शब्द भारतीय पत्रकारिता में फ़ैशन में आया भी नहीं था, शाह इसे व्यवहार में ला चुके थे। मतदाता-सूचियाँ, बूथ-स्तरीकरण, जाति-अंकगणित, लाभार्थी-पहचान — ये सब उनकी कार्यशैली के अभिन्न अंग थे।

उनके संगठनात्मक सुधार — पार्टी दस्तावेज़ों का डिजिटलीकरण, 19 कार्यात्मक विभाग, और विस्तारक योजना — वस्तुतः एक आधुनिक "परिचालन मॉडल" के समकक्ष थे। उन्होंने एक करिश्माई नेता की नोटबुक को एक क्वेरी-योग्य, हस्तांतरणीय प्रणाली से प्रतिस्थापित कर दिया। यह वही व्यवस्थित बुद्धि थी जो उन्हें पिता के पीवीसी पाइप कारख़ाने और स्टॉक एक्सचेंज से विरासत में मिली थी।

इस आँकड़ा-अनुशासन की जड़ें शाह की पारिवारिक पृष्ठभूमि में गहराई तक धँसी थीं। एक ऐसे परिवार में जहाँ पिता अहमदाबाद स्टॉक एक्सचेंज के अध्यक्ष थे, और जहाँ बनिया-वैष्णव लेखा-जोखा परंपरा एक जीवन-शैली थी, संख्याओं और हिसाब के प्रति यह स्वाभाविक श्रद्धा एक संस्कार के रूप में प्राप्त हुई। अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक के सबसे युवा अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने इस अनुशासन को एक विशाल जन-स्तरीय आँकड़ा-कोश पर लागू किया — ग्रामीण गुजरात के जाति, समुदाय और अर्थव्यवस्था के भूगोल का एक सजीव मानचित्र उनके मन में अंकित हो गया। जब यही दृष्टि राष्ट्रीय राजनीति के पैमाने पर लागू हुई, तो परिणाम वह "आधुनिक चाणक्य" था जिसे विश्व ने देखा।

दीर्घकालिक दृष्टि का दर्शन

"आधुनिक चाणक्य" की उपमा का सबसे गहरा अर्थ उनके धैर्य में निहित है। बीबीसी की एक प्रोफ़ाइल यह उल्लेख करती है कि राजनीति में प्रवेश के पश्चात शाह ने पंद्रह से अधिक वर्षों तक एक भी चुनाव नहीं लड़ा; उन्होंने बार-बार कहा कि उन्हें पहले "संगठन का निर्माण" करना था।

यह "लंबी पारी" का दर्शन ही वह सूत्र है जो शाह के संगठनात्मक कौशल को उनके राष्ट्र-निर्माण के संकल्प से जोड़ता है। जो व्यक्ति संगठन-निर्माण में पंद्रह वर्ष का धैर्य रख सकता है, वही व्यक्ति सात दशक पुरानी संवैधानिक विसंगतियों — अनुच्छेद 370, तीन तलाक, समान नागरिक संहिता — को धैर्यपूर्वक, चरण-दर-चरण सुलझाने का संकल्प भी रख सकता है। और जो व्यक्ति "हर युद्ध जीता जाना चाहिए" के सिद्धांत पर चलता हो, वह आलोचना की आँधी में भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता।

उत्तर ब्लॉक का कर्मयोगी: एक दिनचर्या का अध्ययन

"आधुनिक चाणक्य" की प्रतिभा केवल रणनीति में नहीं, बल्कि अनुशासन में भी निहित है — और अमित शाह की दिनचर्या इस अनुशासन का एक जीवंत प्रमाण है। एक वरिष्ठ पत्रकार, जिसने चार गृह मंत्रियों को निकट से देखा है, ने शाह की कार्यशैली का विस्तृत वर्णन किया है।

शाह सुबह लगभग 9:40 से 10:00 बजे के बीच गृह मंत्रालय (उत्तर ब्लॉक) पहुँच जाते हैं, और रात 8 बजे के बाद ही निकलते हैं। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत, जो दोपहर में घर से काम करते थे, शाह अपनी लगभग सभी बैठकें मंत्रालय में ही निर्धारित करते हैं। वे भोजन के लिए घर नहीं लौटते; प्रतिदिन ठीक 12:45 बजे, घर से एक सुव्यवस्थित टोकरी में, उनका शाकाहारी भोजन मंत्रालय पहुँच जाता है। वे छुट्टियों में भी, यहाँ तक कि त्योहारों पर भी, कार्य करते हैं।

एक कनिष्ठ मंत्री ने इसका सार इन शब्दों में दिया: "यदि वरिष्ठ मंत्री कार्यालय में हैं, तो हमें भी वहाँ रहना पड़ता है।" और शाह की कार्य-क्षमता के विषय में एक टिप्पणी प्रसिद्ध है — कि वे "आठ नहीं, अस्सी समितियों को सँभाल सकते हैं।" यह वही बनिया-वैष्णव अनुशासन है, वही शाखा-प्रशिक्षित दिनचर्या, जो अब राष्ट्र की सेवा में लगी है।

इस दिनचर्या का एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह उदाहरण से नेतृत्व करती है। नौकरशाह स्वतः "पंक्ति में आ जाते हैं" — इसलिए नहीं कि उन्हें भयभीत किया जाता है, बल्कि इसलिए कि जब सर्वोच्च नेतृत्व स्वयं इतने कठोर अनुशासन से कार्य करता हो, तो शिथिलता का कोई औचित्य नहीं बचता। यह वही संघ-शाखा का सिद्धांत था जो किशोरावस्था में शाह में रोपा गया था — कि एक स्वयंसेवक होना "राष्ट्र-निर्माण के लिए समस्त सुख-सुविधाओं का त्याग" करना है। उत्तर ब्लॉक की वह 12:45 बजे की भोजन-टोकरी, वे छुट्टियों में किए गए कार्य — ये उसी त्याग की दैनिक, मौन अभिव्यक्तियाँ हैं।

परिवार: सोनल, जय और एक निजी जीवन

अपने सार्वजनिक जीवन की प्रचंडता के विपरीत, अमित शाह का पारिवारिक जीवन अत्यंत निजी और संयमित रहा है। उन्होंने 1987 में सोनल शाह से विवाह किया, जो एक गृहिणी हैं और सार्वजनिक चकाचौंध से दूर रहना पसंद करती हैं।

उनके पुत्र जय शाह (जन्म 1988) ने निरमा विश्वविद्यालय से बी.टेक. की उपाधि प्राप्त की, और क्रिकेट-प्रशासन में एक उल्लेखनीय यात्रा तय की — गुजरात क्रिकेट संघ से लेकर भारतीय क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (बीसीसीआई) के सचिव तक, और फिर 1 दिसंबर 2024 को अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट परिषद (आईसीसी) के चौथे अध्यक्ष तक। जय शाह जगमोहन डालमिया और एन. श्रीनिवासन के पश्चात आईसीसी अध्यक्ष बनने वाले तीसरे भारतीय हैं।

कार्य और परिवार के संतुलन पर, न्यूज़18 राइज़िंग भारत समिट में — जहाँ उनकी पत्नी सोनल भी श्रोताओं में उपस्थित थीं — शाह ने एक मार्मिक बात कही: "मैं परिवार के लिए समय नहीं निकाल सकता; मेरा परिवार मेरे लिए समय चुनकर निकाल लेता है।" यह वाक्य उस व्यक्ति के जीवन की एक झलक देता है जिसने राष्ट्र-सेवा को सर्वोपरि रखा, और जिसका परिवार इस समर्पण में एक मौन साझेदार रहा।

इस वाक्य में एक गहन भावनात्मक स्वीकृति छिपी है। यह एक ऐसे व्यक्ति का आत्म-चित्र है जो जानता है कि उसने अपनी निजी ज़िंदगी का बड़ा भाग एक बड़े उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया है, और जिसका परिवार इस त्याग को न केवल समझता है, बल्कि उसमें सहभागी बनकर अपनी ओर से समय निकालकर इस अंतराल को पाटता है। पत्नी सोनल की उस समिट के श्रोताओं में मौन उपस्थिति इस साझेदारी का एक प्रतीक थी — एक ऐसा परिवार जो प्रचार से दूर रहकर भी राष्ट्र-सेवा के इस यज्ञ में अपनी आहुति देता रहा है।

स्वास्थ्य का पुनर्निर्माण: अनुशासन का एक और प्रमाण

अनुशासन का एक और उल्लेखनीय प्रमाण शाह की स्वास्थ्य-यात्रा है। कोविड-19 से उबरने के पश्चात, शाह ने प्रतिदिन तीन घंटे के प्राणायाम और व्यायाम के माध्यम से 50 किलोग्राम वज़न कम किया — 135 किलोग्राम से 85 किलोग्राम तक।

उन्होंने इस मंच का उपयोग युवाओं को प्रेरित करने के लिए किया, उनसे प्रतिदिन दो घंटे व्यायाम और छह घंटे की नींद का आग्रह किया।

यह व्यक्तिगत पुनर्निर्माण की एक कथा है जो शाह की समूची कार्यशैली के अनुरूप है — कि अनुशासन और दृढ़ संकल्प से किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, चाहे वह एक चुनावी विजय हो, एक संवैधानिक सुधार हो, या स्वयं का स्वास्थ्य।

इस स्वास्थ्य-यात्रा का प्रतीकात्मक महत्व इसके आँकड़ों में निहित है। पचास किलोग्राम — यह कोई मामूली परिवर्तन नहीं, बल्कि शरीर का लगभग एक-तिहाई भार का परित्याग है, और वह भी एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका कार्य-कार्यक्रम विश्व के सबसे व्यस्त कार्यक्रमों में से एक है। प्रतिदिन तीन घंटे प्राणायाम और व्यायाम के लिए निकालना — गृह मंत्रालय की प्रचंड माँगों के बीच — स्वयं में एक असाधारण अनुशासन की माँग करता है। और इसमें भारतीय परंपरा की एक प्रतिध्वनि भी थी: प्राणायाम और योग को साधन बनाना, किसी विदेशी विधि के बजाय। यह वही व्यक्ति था जो कहता था कि हर युद्ध जीता जाना चाहिए — और उसने अपने स्वयं के शरीर के विरुद्ध इस युद्ध को भी उसी रोड-रोलर-सी अविचलता से जीता।

एक मानवीय चित्र

इन व्यक्तिगत विवरणों — दिनचर्या, परिवार, स्वास्थ्य — का महत्व यह है कि वे "आधुनिक चाणक्य" की प्रतिमा के पीछे के मनुष्य को उजागर करते हैं। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो असाधारण अनुशासन से जीता है, जो अपने परिवार से प्रेम करता है किंतु राष्ट्र-सेवा को सर्वोपरि रखता है, और जो स्वयं पर भी वही कठोर अनुशासन लागू करता है जो वह अपने संगठन पर लागू करता है। यह मानवीय चित्र उस अडिगता को और अधिक समझने योग्य बनाता है जो उनके सार्वजनिक जीवन की पहचान है।

यह संगठनात्मक प्रतिभा, यह धैर्य, और यह अडिगता — तीनों एक साथ उस ऐतिहासिक क्षण में प्रकट हुईं जिसे यह पुस्तक अपना केंद्र मानती है: 5 अगस्त 2019, अनुच्छेद 370 का निरसन।

उस ऐतिहासिक दिन की ओर अब हम बढ़ते हैं।

अध्याय 9

अनुच्छेद 370: पटेल का अधूरा कार्य पूर्ण

5 अगस्त 2019 — यह तिथि आधुनिक भारत के इतिहास में उसी प्रकार अंकित है जैसे रियासतों के एकीकरण की तिथियाँ। इस दिन, गृह मंत्री अमित शाह ने राज्यसभा में वह संकल्प प्रस्तुत किया जिसे सात दशकों से "असंभव" माना जाता रहा था — अनुच्छेद 370 और 35A का निरसन, और जम्मू-कश्मीर का पुनर्गठन। यह इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस का सबसे शुद्ध और प्रत्यक्ष प्रमाण है: पटेल का अधूरा कार्य, शाह द्वारा पूर्ण।

संवैधानिक विसंगति

अनुच्छेद 370 जम्मू-कश्मीर को विशेष स्वायत्त दर्जा देता था, जबकि अनुच्छेद 35A राज्य विधानमंडल को "स्थायी निवासियों" और उनके विशेष अधिकारों को परिभाषित करने का अधिकार देता था। आलोचकों ने — जिनमें डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे एकीकरण के विचारक भी शामिल थे — लंबे समय से तर्क दिया था कि ये प्रावधान भारत के भीतर एक "महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी" द्वितीय-श्रेणी की नागरिकता-व्यवस्था उत्पन्न करते हैं, और "अस्थायी" स्वायत्तता के आवरण में सीमा-पार आतंकवाद को पनपने देते हैं।

मोदी सरकार के 2019 के जनादेश (303 लोकसभा सीटें) ने भाजपा को वह संसदीय बहुमत दिया जिससे वह कर सके जो पिछली सरकारें टालती रही थीं।

सात दशकों की प्रतीक्षा

इस विसंगति की जड़ें भारत के विभाजन और रियासतों के एकीकरण के उस उथल-पुथल भरे काल में थीं, जिसका विस्तृत इतिहास इस पुस्तक के पूर्व अध्याय में देखा जा चुका है। यहाँ केवल इतना स्मरण करना पर्याप्त है कि जहाँ सरदार पटेल ने लगभग सभी रियासतों को दृढ़ता और कूटनीति से भारत में मिला लिया, वहाँ जम्मू-

कश्मीर का एकीकरण एक "अस्थायी" प्रावधान के सहारे अधूरा रह गया। यह "अस्थायित्व" — जो संविधान में स्पष्ट रूप से अंकित था — सात दशकों तक एक स्थायी वास्तविकता बना रहा।

इन सात दशकों में अनेक सरकारें आईं और गईं, परंतु किसी ने इस विसंगति को सुलझाने का साहस नहीं किया। इसके पीछे का कारण केवल राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव नहीं था, बल्कि एक गहरी आशंका भी थी — कि इस प्रावधान को छूना एक राजनीतिक और क़ानूनी भूचाल को आमंत्रित करना होगा। यही वह पृष्ठभूमि थी जिसमें 2019 का निर्णय इतना ऐतिहासिक बन गया। जो कार्य सात दशकों से "असंभव" माना जाता रहा था, उसे एक तैयार, दृढ़-संकल्पित नेतृत्व ने कुछ ही घंटों में संसदीय वास्तविकता में बदल दिया।

क़ानूनी और संवैधानिक तंत्र

निरसन दो राष्ट्रपति संवैधानिक आदेशों के माध्यम से, एक ही दिन में, संपन्न हुआ: - **संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 2019 (सी.ओ. 272)** , जिसने अनुच्छेद 367 में संशोधन कर "संविधान सभा" वाक्यांश की व्याख्या "विधान सभा" के रूप में की। यह एक क़ानूनी नवाचार था। - **सी.ओ. 273**, जिसने अनुच्छेद 370 के लगभग समस्त भाग को निष्प्रभावी घोषित किया।

इसके पश्चात **जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019** ने राज्य को दो केंद्र-शासित प्रदेशों में विभाजित किया — विधानसभा सहित जम्मू-कश्मीर, और विधानसभा रहित लद्दाख। दोनों 31 अक्टूबर 2019 को प्रभावी हुए। इसके साथ अनुच्छेद 35A भी निरस्त हो गया।

एक क़ानूनी रणनीति की प्रतिभा

इस क़ानूनी तंत्र की सूक्ष्मता शाह की उस "आधुनिक चाणक्य" वाली रणनीतिक प्रतिभा का प्रमाण थी जिसे पिछले अध्याय में रेखांकित किया गया। सबसे बड़ी क़ानूनी बाधा यह थी कि अनुच्छेद 370 के अनुसार, इसे निरस्त करने के लिए जम्मू-कश्मीर की "संविधान सभा" की संस्तुति आवश्यक थी — परंतु वह संविधान सभा तो 1957 में ही भंग हो चुकी थी। इस प्रकार, अक्षरशः, अनुच्छेद को निरस्त करना

असंभव-सा प्रतीत होता था, क्योंकि वह संस्था ही अस्तित्व में नहीं थी जिसकी सहमति आवश्यक थी।

यहीं पर सी.ओ. 272 की प्रतिभा प्रकट होती है। अनुच्छेद 367 — जो संविधान की व्याख्या के नियम निर्धारित करता है — में संशोधन करके यह स्थापित किया गया कि जहाँ "संविधान सभा" लिखा है, वहाँ उसका अर्थ "विधान सभा" समझा जाएगा। चूँकि उस समय जम्मू-कश्मीर राष्ट्रपति-शासन के अधीन था, विधानसभा की शक्तियाँ संसद में निहित थीं। इस प्रकार एक प्रतीत-होती दुर्लंघ्य क़ानूनी बाधा को एक सुविचारित, संवैधानिक रूप से वैध मार्ग से हटा दिया गया। यह वही "रोड रोलर" था जो बाधाओं को बल से नहीं, बल्कि व्यवस्थित बुद्धि से समतल करता है — एक बाधा को दूसरी संवैधानिक व्यवस्था के सहारे लाँघते हुए।

संसद में संचालन

राज्यसभा ने इन्हें 5–6 अगस्त को 125 के मुक़ाबले 61 मतों से पारित किया; लोकसभा ने 6 अगस्त को 370 के मुक़ाबले 70 मतों से अनुसमर्थन किया। राष्ट्रपति की स्वीकृति 9 अगस्त 2019 को मिली। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इतने ऐतिहासिक और विवादास्पद निर्णय को संसद के दोनों सदनों ने इतने स्पष्ट बहुमत से पारित किया।

राज्यसभा में, जहाँ सरकार के पास स्पष्ट संख्या-बल नहीं था, इस संकल्प का इतने व्यापक बहुमत से पारित होना विशेष रूप से उल्लेखनीय था। यह शाह की राजनीतिक कुशलता का एक और प्रमाण था — विभिन्न दलों को अपने पक्ष में लाने की वह क्षमता जो केवल एक कुशल संख्या-शास्त्री और संगठनकर्ता के पास हो सकती है। यह वही बूथ-गणित की मानसिकता थी, जो अब संसद के पटल पर मतों के अंकगणित में रूपांतरित हो गई थी।

शाह का पाँच-स्तंभीय तर्क

संसद के पटल पर, शाह ने एक पाँच-स्तंभीय तर्क खड़ा किया:

1. **राष्ट्रीय एकीकरण**: उन्होंने इस क़दम को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और बी. आर. आंबेडकर की अधूरी दृष्टि से जोड़ा, और निरसन को "एक, एकजुट और एकीकृत भारत" की प्राप्ति के रूप में प्रस्तुत किया।
2. **मानवीय क़ीमत**: "जम्मू-कश्मीर में रक्तपात का एक लंबा युग समाप्त होने जा रहा है... यदि अनुच्छेद *370* न होता, तो *41,849* लोगों को अपनी जान न गँवानी पड़ती।"
3. **समानता का तर्क**: शाह ने अनुच्छेद 370 को "महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी" बताया, और यह रेखांकित किया कि 9 संवैधानिक संशोधनों सहित 106 भारतीय क़ानून जम्मू-कश्मीर में लागू नहीं हो सकते थे।
4. **अस्थायी-प्रावधान का खंडन**: "हमारे संविधान का अनुच्छेद *370* एक अस्थायी प्रावधान है। यह स्थायी नहीं है।"
5. **विकास और संप्रभुता**: शाह ने तर्क दिया कि अनुच्छेद 370 की व्यवस्था लोगों के मन में संदेह उत्पन्न करती थी कि क्या कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, जबकि यह राज्य में ग़रीबी-उन्मूलन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यटन और महिला-सशक्तिकरण को अवरुद्ध करती थी।

प्रधानमंत्री मोदी ने उसी संध्या राष्ट्र को संबोधित करते हुए जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के "युवाओं, बहनों और बेटियों" से अपने क्षेत्र के विकास की कमान अपने हाथ में लेने का आह्वान किया।

एक तर्क की संरचना

इन पाँच स्तंभों की संरचना स्वयं में शाह की कार्यशैली का प्रतिबिंब थी। प्रत्येक स्तंभ एक भिन्न श्रोता-वर्ग और एक भिन्न आपत्ति को संबोधित करता था — राष्ट्रवादी को एकीकरण का तर्क, मानवतावादी को रक्तपात की क़ीमत का, समतावादी को

समानता का, संविधानवादी को "अस्थायी प्रावधान" का, और व्यावहारिकतावादी को विकास का। यह एक ऐसा तर्क-जाल था जिसमें प्रत्येक धागा किसी विशिष्ट प्रतिरोध को निष्प्रभावी करता था। यही वह बहु-आयामी, विवरण-संपन्न तैयारी थी जो शाह को एक साधारण वक्ता से अलग करती थी।

"41,849 लोग" — यह आँकड़ा विशेष रूप से शक्तिशाली था, क्योंकि यह बहस को अमूर्त संवैधानिक सिद्धांतों से हटाकर मानवीय क्षति के ठोस धरातल पर ले आया। यह वही आँकड़ा-अनुशासन था जो शाह की पहचान है — जहाँ एक नैतिक तर्क को भी एक सटीक संख्या से बल दिया जाता है। और "महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी" — यह तीन-शब्दीय सूत्र इतना स्मरणीय और प्रभावी था कि इसने इस निर्णय के नैतिक आधार को जन-स्मृति में स्थायी रूप से अंकित कर दिया।

पटेल-शाह समानांतर: सबसे शुद्ध रूप

यहाँ इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस अपने सबसे शुद्ध रूप में प्रकट होती है। 24 अगस्त 2019 को शाह ने स्वयं इस रेखा को शब्द दिए: *"सरदार पटेल ने लगभग अठारह महीनों में 600 रियासतों को एक किया, परंतु जम्मू-कश्मीर के एकीकरण का कार्य अधूरा रह गया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने उस शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है।"*

1 अप्रैल 2024 को उन्होंने और स्पष्ट कहा: *"पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 लागू करके एक भूल की।"* और 29 सितंबर 2019 को उन्होंने कहा कि *"1948 में युद्धविराम की घोषणा, जब हमारी सेना जीत रही थी, एक भूल थी।"*

यह तुलना केवल अलंकारिक नहीं है। दोनों गृह मंत्रियों के बीच एक संरचनात्मक समानता है: पटेल ने रियासतों के एकीकरण के लिए "कूटनीति और बल के मिश्रण" का प्रयोग किया; शाह ने जम्मू-कश्मीर के एकीकरण के लिए "संवैधानिक मार्ग और राजनीतिक इच्छाशक्ति के मिश्रण" का। अंतर केवल साधन का है — पटेल का साधन भौतिक बल था, शाह का साधन संवैधानिक प्रक्रिया। परंतु लक्ष्य वही था: राष्ट्र की एकता को अपरिवर्तनीय बनाना।

दो लौह पुरुषों का अंतर और साम्य

इस समानांतर की गहराई में एक सूक्ष्म अंतर भी निहित है जो इसे और अधिक सार्थक बनाता है। पटेल का कार्य क्षैतिज था — उन्होंने 565 बिखरी इकाइयों को एक केंद्र में समेटा। शाह का कार्य अभिसारी था — उन्होंने एक अपवाद को हटाकर शेष राष्ट्र के साथ समतल किया। पटेल को विभाजन के तत्काल बाद का वह विशिष्ट ऐतिहासिक अवसर प्राप्त था जब रियासतों के पास भारत में मिलने के अतिरिक्त कोई व्यावहारिक विकल्प नहीं था; शाह को सात दशकों की जड़ जमा चुकी विसंगति, स्थापित राजनीतिक हितों, और एक जटिल क़ानूनी ढाँचे से जूझना पड़ा।

इस अर्थ में, कुछ टीकाकारों ने यह तर्क दिया है कि शाह का कार्य अपने ढंग से कहीं अधिक जटिल था — क्योंकि उन्हें यह सब एक परिपक्व लोकतंत्र की संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर रहकर, न्यायिक समीक्षा की पूरी संभावना के साथ, करना था। राम माधव की एक प्रसिद्ध टिप्पणी इस विचार का सार प्रस्तुत करती है — कि यदि सरदार पटेल भारत के प्रथम प्रधानमंत्री होते, तो जम्मू-कश्मीर की कोई समस्या ही उत्पन्न न होती। शाह ने, एक प्रकार से, इतिहास की उस "यदि" को सुधारने का कार्य किया — उस अधूरे एकीकरण को पूर्ण करते हुए जिसे लौह पुरुष पटेल आरंभ कर चुके थे।

5 अगस्त 2019: एक ऐतिहासिक दिन का दृश्य

उस दिन राज्यसभा का दृश्य भारतीय संसदीय इतिहास में अंकित हो गया। प्रातःकाल से ही अटकलें थीं कि सरकार जम्मू-कश्मीर के संबंध में कोई बड़ा क़दम उठाने वाली है। परंतु इसका पैमाना किसी ने नहीं सोचा था।

जब अमित शाह उठे और संकल्प प्रस्तुत किया, तो सदन में एक क्षण के लिए स्तब्धता छा गई, और फिर शोर उठा। विपक्ष के सदस्य अपने स्थानों से उठ खड़े हुए, नारे लगने लगे। परंतु शाह की आवाज़ स्थिर रही। उन्होंने एक-एक प्रावधान को स्पष्ट किया, संवैधानिक आधार समझाया, और आपत्तियों का उत्तर दिया। उनकी प्रस्तुति में न आवेश था, न उत्तेजना — केवल एक तैयार, तथ्य-संपन्न दृढ़ता।

यह दृश्य स्वयं में शाह की कार्यशैली का प्रतीक था। दशकों की तैयारी, गोपनीयता से रची गई रणनीति, और फिर एक ही दिन में निर्णायक क्रियान्वयन —

यह वही "धैर्यपूर्ण गति" थी जो उनकी पहचान है। सदन के बाहर, देश भर में, यह समाचार बिजली की तरह फैल गया। सात दशकों से जिसे "असंभव" माना जाता था, वह कुछ ही घंटों में संसदीय वास्तविकता बन गया।

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया और संप्रभुता का दावा

अनुच्छेद 370 के निरसन की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया भी उल्लेखनीय थी। पाकिस्तान ने इसे अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने का प्रयास किया, परंतु भारत का रुख़ स्पष्ट और दृढ़ रहा — कि यह भारत का आंतरिक और संप्रभु मामला है। शाह और सरकार ने बार-बार यह रेखांकित किया कि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, और इसके पुनर्गठन का निर्णय पूर्णतः एक घरेलू, संवैधानिक प्रक्रिया है।

यह संप्रभुता का दृढ़ दावा पटेल की उस परंपरा की प्रतिध्वनि था जिसमें राष्ट्र की एकता और अखंडता पर कोई समझौता नहीं किया जाता। जैसे पटेल ने हैदराबाद और जूनागढ़ के मामलों में अंतर्राष्ट्रीय दबाव की परवाह किए बिना राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि रखा, वैसे ही शाह ने कश्मीर के मामले में।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी की विरासत

अनुच्छेद 370 के निरसन को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में रखना आवश्यक है। भारतीय जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने 1950 के दशक में ही जम्मू-कश्मीर के विशेष दर्जे के विरुद्ध संघर्ष किया था। उनका प्रसिद्ध नारा था — "एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान नहीं चलेंगे।" मुखर्जी की 1953 में श्रीनगर में हिरासत के दौरान रहस्यमय मृत्यु हो गई, और उनका यह संघर्ष अधूरा रह गया।

जब शाह ने 2019 में अनुच्छेद 370 का निरसन किया, तो उन्होंने इसे स्पष्ट रूप से मुखर्जी की अधूरी दृष्टि की पूर्णता के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार यह निर्णय एक दोहरी ऐतिहासिक निरंतरता का प्रतीक बना — एक ओर सरदार पटेल के अधूरे एकीकरण-कार्य की पूर्णता, दूसरी ओर श्यामा प्रसाद मुखर्जी के अधूरे संघर्ष की परिणति। दोनों ही नायक राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि मानते थे, और दोनों का अधूरा कार्य शाह के एक ही निर्णय में पूर्ण हुआ।

इस वैचारिक वंशावली का महत्व यह है कि यह 2019 के निर्णय को किसी आकस्मिक राजनीतिक कार्रवाई के रूप में नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक वैचारिक संकल्प की परिणति के रूप में स्थापित करता है। शाह स्वयं संघ और जनसंघ की उसी परंपरा के उत्पाद थे जिसकी नींव मुखर्जी ने रखी थी। उनके लिए यह निरसन एक व्यक्तिगत राजनीतिक उपलब्धि से कहीं अधिक था — यह एक वैचारिक ऋण का भुगतान था, एक पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे संकल्प की अंतिम परिणति।

सुरक्षा और विकास का तर्क

शाह के तर्क का एक केंद्रीय आयाम सुरक्षा और विकास का युग्मन था। उनका दावा था कि अनुच्छेद 370 ने जम्मू-कश्मीर में दो प्रकार की क्षति पहुँचाई — एक सुरक्षा के स्तर पर, जहाँ "अस्थायी" स्वायत्तता के आवरण में सीमा-पार आतंकवाद पनपा; और दूसरी विकास के स्तर पर, जहाँ राज्य के लोग उन 106 केंद्रीय क़ानूनों के लाभ से वंचित रहे जो शेष भारत में नागरिकों को प्राप्त थे — शिक्षा का अधिकार, महिलाओं के संपत्ति-अधिकार, और अनेक कल्याणकारी योजनाएँ।

शाह ने तर्क दिया कि यह व्यवस्था विशेषकर महिलाओं, दलितों और जनजातियों के प्रति अन्यायपूर्ण थी — इसीलिए उन्होंने इसे "महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी" कहा। उदाहरण के लिए, जम्मू-कश्मीर की कोई महिला यदि राज्य के बाहर विवाह करती, तो वह अपने संपत्ति-अधिकार खो देती थी — एक ऐसा प्रावधान जो लैंगिक समानता के मूल सिद्धांत के विरुद्ध था। निरसन के पश्चात, ये सभी विसंगतियाँ समाप्त हो गईं।

यह सुरक्षा-विकास युग्मन शाह के समूचे राष्ट्र-निर्माण दर्शन का सूक्ष्म रूप था। उनके लिए सुरक्षा और विकास परस्पर-विरोधी लक्ष्य नहीं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू थे — एक अस्थिर, असमान, और अलग-थलग रखा गया क्षेत्र न तो सुरक्षित रह सकता है, न समृद्ध। अनुच्छेद 370 का निरसन इस दृष्टि से केवल एक राजनीतिक या क़ानूनी कार्रवाई नहीं, बल्कि एक समग्र विकास-रणनीति का प्रथम चरण था।

निरसन के पश्चात: एक बदलता परिदृश्य

निरसन के पश्चात के वर्षों में, सरकार ने जम्मू-कश्मीर में अनेक परिवर्तनों का दावा किया — केंद्रीय क़ानूनों का विस्तार, विकास-परियोजनाओं की गति, और 2024 में एक दशक बाद सामान्य रूप से संपन्न लोकसभा चुनाव। शाह ने अगस्त 2024 में दृढ़ता से कहा: *"जम्मू-कश्मीर में अब या कभी भी अनुच्छेद 370 का कोई स्थान नहीं है। इसे कभी पुनर्स्थापित नहीं किया जाएगा।"*

यह दृढ़ता — कि एक बार लिया गया दीर्घकालिक राष्ट्रहित का निर्णय अपरिवर्तनीय है — शाह की समूची राजनीति का सार है। यह वही अडिगता है जो उन्हें पटेल की लौह-परंपरा का उत्तराधिकारी बनाती है।

सर्वोच्च न्यायालय की मुहर

11 दिसंबर 2023 को, सर्वोच्च न्यायालय की पाँच-न्यायाधीशों की पीठ ने सर्वसम्मति से अनुच्छेद 370 के निरसन को बरक़रार रखा, यह मानते हुए कि जम्मू-कश्मीर राज्य ने विलय के पश्चात आंतरिक संप्रभुता का कोई तत्व नहीं रखा था। यह निर्णय शाह के क़दम पर संवैधानिक वैधता की मुहर थी — एक प्रमाण कि यह कार्रवाई बल से नहीं, बल्कि संविधान के भीतर रहकर संपन्न हुई।

इस सर्वसम्मत न्यायिक निर्णय का महत्व अतिशयोक्ति से परे है। एक ऐसे निर्णय के विषय में, जिसे आलोचकों ने अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक तक कहा था, देश की सर्वोच्च न्यायिक पीठ का सर्वसम्मति से अनुमोदन — यह शाह की उस क़ानूनी रणनीति की अंतिम पुष्टि थी जिसे सी.ओ. 272 की रचना में देखा गया। जो "रोड रोलर" बाधाओं को संवैधानिक मार्ग से समतल करता है, उसका मार्ग अंततः संविधान के सर्वोच्च व्याख्याता द्वारा भी वैध ठहराया गया।

अगस्त 2024 तक शाह यह घोषणा कर सकते थे: *"जम्मू-कश्मीर में अब या कभी भी अनुच्छेद 370 का कोई स्थान नहीं है। इसे कभी पुनर्स्थापित नहीं किया जाएगा।"* 2024 के लोकसभा चुनाव वहाँ एक दशक बाद सामान्य रूप से संपन्न हुए।

आलोचना का सामना

यह स्वीकार करना आवश्यक है कि इस निर्णय की तीखी आलोचना भी हुई। आलोचकों ने कश्मीरी निवासियों में भय और केंद्रीकरण की चिंताओं की ओर संकेत किया; पूर्ण राज्य का दर्जा और विधानसभा-चुनाव की बहाली को एक लंबित प्रश्न बताया। परंतु यहीं पर शाह की वह विशेषता प्रकट होती है जो इस पुस्तक का केंद्रीय विषय है — एक राष्ट्र-निर्माता आलोचना के सामने अपने दीर्घकालिक संकल्प से विचलित नहीं होता। उन्होंने न तो माफ़ी माँगी, न पीछे हटे; उन्होंने दृढ़ता से अपना तर्क दोहराया कि राष्ट्र का दीर्घकालिक हित किसी अल्पकालिक राजनीतिक सुविधा से ऊपर है।

इस अडिगता को समझने के लिए शाह की उस व्यापक राजनीतिक मनोवृत्ति को स्मरण करना उपयोगी है जो उनके समूचे जीवन में दिखाई देती है — चाहे वह 2010-12 के राजनीतिक वनवास का काल हो, या नागरिकता संशोधन अधिनियम पर "चाहे जो हो जाए" वाली उनकी दृढ़ता। शाह के लिए, एक बार जब कोई निर्णय राष्ट्रहित में लिया जा चुका हो और संवैधानिक रूप से वैध हो, तो उससे पीछे हटना एक प्रकार का आत्म-विश्वासघात होता। यही वह लौह-गुण है जो उन्हें पटेल की परंपरा से जोड़ता है — वह दृढ़ता जो आलोचना की आँधी में भी अविचलित रहती है, क्योंकि उसकी जड़ें अल्पकालिक राजनीतिक गणना में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक राष्ट्रीय दृष्टि में हैं।

अनुच्छेद 370 का निरसन शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का प्रथम और सबसे बड़ा उदाहरण था। परंतु यह अकेला नहीं था। इसके साथ-साथ, और इसके बाद, सुधारों की एक समूची श्रृंखला आई — तीन तलाक, समान नागरिक संहिता, नागरिकता संशोधन अधिनियम, और नक्सलवाद के विरुद्ध निर्णायक अभियान। इन सबको एक ही सूत्र जोड़ता था: तुष्टिकरण नहीं, राष्ट्र-निर्माण।

उस श्रृंखला की ओर अब हम बढ़ते हैं।

खंड तीन — सुधार और संकल्प

अध्याय 10

तीन तलाक: करोड़ों बहनों की गरिमा

राष्ट्र-निर्माण केवल भूगोल का प्रश्न नहीं है; वह न्याय और समानता का प्रश्न भी है। और अमित शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का एक सबसे मार्मिक अध्याय है — तीन तलाक का उन्मूलन, जिसने करोड़ों मुस्लिम बहनों को वह गरिमा दी जो उन्हें दशकों से वंचित रखा गया था।

शाह बानो से शायरा बानो तक

तत्काल तीन तलाक (तलाक़-ए-बिद्दत) की प्रथा पूर्व के सुधार-प्रयासों के बावजूद जीवित रही थी — 1985 के शाह बानो निर्णय के पश्चात भी। अनुमानों के अनुसार, लाखों मुस्लिम महिलाओं को एक ही उच्चारण से तलाक़ दे दिया जाता था। 2017 के ऐतिहासिक **शायरा बानो बनाम भारत संघ** निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने तत्काल तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित किया।

शाह और प्रधानमंत्री मोदी ने इस निर्णय को आपराधिक क़ानून में बदलने का संकल्प किया — इसे इस अंतिम परीक्षा के रूप में प्रस्तुत करते हुए कि क्या भारत की “अल्पसंख्यक” महिलाओं को अन्य भारतीय महिलाओं के समान क़ानूनी गरिमा मिलेगी।

शायरा बानो की लड़ाई: एक व्यक्ति का साहस

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय का 2017 का निर्णय आकाश से नहीं उतरा; वह एक साहसी महिला की वर्षों की क़ानूनी लड़ाई का परिणाम था। शायरा बानो — उत्तराखंड की एक महिला, जिसे उसके पति ने तत्काल तीन तलाक के माध्यम से त्याग दिया — ने स्वयं उच्चतम न्यायालय का द्वार खटखटाया। उसने तत्काल तीन तलाक, बहुविवाह और निकाह-हलाला की प्रथाओं को संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 के विरुद्ध बताते हुए चुनौती दी। उसका मामला अकेला

नहीं था; उसके साथ अनेक अन्य पीड़ित महिलाओं की याचिकाएँ जुड़ीं, जिससे यह एक व्यापक संवैधानिक प्रश्न बन गया।

सर्वोच्च न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की संविधान-पीठ ने, जिसमें विभिन्न धर्मों के न्यायाधीश शामिल थे, अगस्त 2017 में 3-2 के बहुमत से तत्काल तीन तलाक को असंवैधानिक और शून्य घोषित किया। यह एक ऐतिहासिक क्षण था — परंतु यह केवल आधी विजय थी। न्यायालय ने प्रथा को असंवैधानिक तो घोषित कर दिया, किंतु इसके विरुद्ध एक प्रभावी प्रवर्तन-तंत्र का अभाव था। ज़मीनी सच्चाई यह थी कि प्रथा जारी रही — क्योंकि उसे रोकने के लिए कोई दंडात्मक प्रावधान नहीं था। यहीं पर शाह और मोदी सरकार ने हस्तक्षेप किया, और उस अधूरी विजय को पूर्ण किया।

क़ानूनी तंत्र और संसदीय यात्रा

मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019 ने तत्काल तीन तलाक के किसी भी उच्चारण (बोला हुआ, लिखित, या इलेक्ट्रॉनिक) को एक संज्ञेय, ग़ैर-ज़मानती अपराध बना दिया, जिसमें तीन वर्ष तक की क़ैद और जुर्माना का प्रावधान था। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें पति को पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण का प्रावधान करना अनिवार्य था, और ज़मानत केवल तभी दी जा सकती थी जब मजिस्ट्रेट पीड़ित महिला को सुन ले — एक सुविचारित, लिंग-संवेदनशील संरचना।

यह एक लंबी विधायी यात्रा थी। 2018 का एक प्रयास लोकसभा में विफल रहा; सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया, और फिर विधेयक पुनः प्रस्तुत किया। अंततः अधिनियम लोकसभा में 30 जुलाई 2019 को और राज्यसभा में 1 अगस्त को पारित हुआ, और 1 अगस्त 2019 से प्रभावी हुआ।

विधायी संकल्प की दृढ़ता

इस अधिनियम की विधायी यात्रा अपने आप में शाह की उस अडिगता की कहानी है जो इस पुस्तक का बार-बार उभरने वाला विषय है। 2018 में जब विधेयक राज्यसभा में अटक गया, तो अनेक राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने अनुमान लगाया कि सरकार इस “विवादास्पद” मुद्दे को छोड़ देगी। आख़िरकार, यह एक राजनीतिक रूप

से जोखिमपूर्ण क़दम था — एक ऐसा सुधार जिसका विरोध शक्तिशाली रूढ़िवादी संगठन कर रहे थे।

परंतु सरकार पीछे नहीं हटी। उसने एक अध्यादेश के माध्यम से क़ानूनी शून्यता को भरा, और फिर 2019 के आम चुनाव में प्रचंड बहुमत के साथ लौटकर विधेयक को पुनः प्रस्तुत किया। यह एक सुविचारित रणनीति थी — जैसे शाह अपने प्रत्येक राजनीतिक अभियान में करते हैं, उन्होंने इस सुधार को भी एक दीर्घकालिक संकल्प के रूप में देखा, जिसे अल्पकालिक बाधाओं के बावजूद पूर्ण किया जाना था। जब विधेयक अंततः पारित हुआ, तो वह एक संसदीय कौशल और राजनीतिक दृढ़ता का संयुक्त परिणाम था।

“तुष्टिकरण नहीं, विकास”

19 अगस्त 2019 को कॉन्स्टीट्यूशन क्लब ऑफ़ इंडिया में, शाह ने इस अधिनियम के दार्शनिक सार को शब्द दिए: “हम तुष्टिकरण में नहीं, विकास में विश्वास करते हैं।” उन्होंने राजनीतिक तुष्टिकरण को एक “शॉर्टकट” बताया जो समग्र सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध करता है।

उन्होंने कहा: “तीन तलाक का उन्मूलन करोड़ों मुस्लिम महिलाओं को गरिमा और समानता सुनिश्चित करेगा।” और एक सर्वेक्षण का हवाला देते हुए, जिसमें 92.1% मुस्लिम महिलाओं ने इस प्रथा के उन्मूलन की इच्छा व्यक्त की थी, उन्होंने इसे दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित के संदर्भ में रखा: “यह मुस्लिम महिलाओं को सम्मान और गरिमा लौटाने के विषय में है। यह लैंगिक समानता स्थापित करने के विषय में है।” उन्होंने इस विधेयक के पारित होने को “ऐतिहासिक” बताया।

92.1% का संदेश: समुदाय की अपनी आवाज़

उस 92.1% के आँकड़े पर ठहरना आवश्यक है, क्योंकि वह शाह के समूचे तर्क की धुरी है। आलोचकों ने इस सुधार को “एक समुदाय पर बाहरी हस्तक्षेप” बताने का प्रयास किया। परंतु जब उसी समुदाय की दस में से नौ से अधिक महिलाएँ इस प्रथा के अंत की प्रतीक्षा कर रही थीं, तो यह तर्क ढह जाता है। यह सुधार किसी समुदाय

पर थोपा नहीं गया था; वह उस समुदाय की महिलाओं की एक लंबे समय से दबी हुई माँग का उत्तर था।

शाह ने इस बिंदु को बार-बार रेखांकित किया। उनका तर्क था कि एक वास्तविक धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र में, किसी प्रथा का धार्मिक होना उसे न्याय की कसौटी से ऊपर नहीं रखता। यदि वह प्रथा करोड़ों महिलाओं की गरिमा का हनन करती है, और स्वयं वे महिलाएँ उसके अंत की माँग करती हैं, तो राज्य का कर्तव्य है कि वह उनके पक्ष में खड़ा हो — न कि उन रूढ़िवादी तत्वों के पक्ष में जो प्रथा को धर्म की आड़ में जीवित रखना चाहते हैं। यह "विकास बनाम तुष्टिकरण" के समीकरण का मूल था।

शाह बानो: एक ऐतिहासिक भूल

तीन तलाक के प्रश्न को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में रखना आवश्यक है, क्योंकि यह स्वतंत्र भारत की राजनीति की एक सबसे विवादास्पद कथा से जुड़ा है — शाह बानो प्रकरण।

1985 में, सर्वोच्च न्यायालय ने शाह बानो नामक एक तलाक़शुदा मुस्लिम महिला के पक्ष में निर्णय दिया, और उसे भरण-पोषण का अधिकार दिया। यह निर्णय लैंगिक न्याय की दिशा में एक ऐतिहासिक क़दम था। परंतु उस समय की राजव सरकार ने, कुछ रूढ़िवादी तत्वों के दबाव में, संसद में एक क़ानून पारित कर इस निर्णय को पलट दिया। यह क़दम — जिसे व्यापक रूप से "तुष्टिकरण" का सबसे स्पष्ट उदाहरण माना गया — इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस के लिए एक प्रतीकात्मक संदर्भ-बिंदु है।

शाह बानो प्रकरण ने एक स्पष्ट विभाजन-रेखा खींच दी: एक ओर वे जो अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के लिए लैंगिक न्याय का बलिदान देने को तैयार थे; दूसरी ओर वे जो समानता के सिद्धांत को सर्वोपरि मानते थे। जब तीन दशक बाद शाह और मोदी ने तीन तलाक का उन्मूलन किया, तो उन्होंने वस्तुतः शाह बानो प्रकरण की उस ऐतिहासिक भूल को सुधारा। यही कारण है कि वे इसे "तुष्टिकरण नहीं, विकास" के दर्शन का प्रतीक बनाते हैं।

तीन दशकों का चक्र: 1985 से 2019 तक

शाह बानो प्रकरण और तीन तलाक अधिनियम के बीच के तीन दशकों को एक ऐतिहासिक चक्र के रूप में देखा जा सकता है। 1985 में, एक न्यायालयीन विजय को राजनीतिक तुष्टिकरण के नाम पर पलट दिया गया था। 2017 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर लैंगिक न्याय के पक्ष में निर्णय दिया। और इस बार, 2019 में, सरकार ने उस निर्णय को पलटने के बजाय उसे और सशक्त किया — एक क़ानून के माध्यम से जो उसे प्रवर्तन-योग्य बनाता था।

यह विरोधाभास ही शाह के राजनीतिक दर्शन को परिभाषित करता है। 1985 की सरकार ने न्यायपालिका के लैंगिक-न्याय के निर्णय को राजनीतिक दबाव में पलटा था; 2019 की सरकार ने न्यायपालिका के लैंगिक-न्याय के निर्णय को राजनीतिक संकल्प से लागू किया। एक ही प्रश्न पर दो सरकारों की दो विपरीत प्रतिक्रियाएँ — यही "तुष्टिकरण" और "राष्ट्र-निर्माण" के बीच का अंतर स्पष्ट करती हैं। प्रधानमंत्री मोदी ने इसे एक "ऐतिहासिक भूल" को सुधारना कहा, और यह वर्णन सटीक है — क्योंकि यह सचमुच 1985 की उस भूल का सुधार था।

करोड़ों बहनों की मौन पीड़ा

तीन तलाक की प्रथा के पीछे करोड़ों मुस्लिम महिलाओं की मौन पीड़ा थी। एक ही उच्चारण से — चाहे वह क्रोध में हो, नशे में हो, या यहाँ तक कि फ़ोन या संदेश के माध्यम से — एक महिला का समूचा वैवाहिक जीवन क्षण भर में समाप्त हो सकता था। उसके पास न तो कोई क़ानूनी सुरक्षा थी, न आर्थिक सुरक्षा, और प्रायः न ही अपने बच्चों के भविष्य की कोई गारंटी।

यह केवल एक धार्मिक या सांस्कृतिक प्रश्न नहीं था; यह मानवीय गरिमा का प्रश्न था। और शाह ने इसे ठीक इसी रूप में प्रस्तुत किया। 92.1% मुस्लिम महिलाओं द्वारा इस प्रथा के उन्मूलन की इच्छा व्यक्त करना इस बात का प्रमाण था कि यह सुधार किसी समुदाय पर थोपा नहीं गया, बल्कि उसी समुदाय की महिलाओं की मौन माँग का उत्तर था।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बिंदु उभरता है जो तुष्टिकरण-विरोधी दर्शन के मूल में है: सच्चा धर्मनिरपेक्षतावाद किसी समुदाय के सबसे रूढ़िवादी तत्वों के तुष्टिकरण में

नहीं, बल्कि उस समुदाय के सबसे कमज़ोर सदस्यों — विशेषकर महिलाओं — के अधिकारों की रक्षा में निहित है। शाह का तर्क यही था कि दशकों तक "तुष्टिकरण" के नाम पर जो हुआ, वह वस्तुतः मुस्लिम महिलाओं के साथ अन्याय था।

एक नया विवाहिक सुरक्षा-कवच

अधिनियम के सुरक्षा-प्रावधानों को समझना इसकी प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है। आलोचकों ने यह आशंका व्यक्त की कि पति को जेल भेजने से पत्नी और बच्चे और अधिक असहाय हो जाएँगे — क्योंकि कमाने वाला व्यक्ति कारागार में होगा। परंतु क़ानून के निर्माताओं ने इस आशंका का पूर्वानुमान करके ही इसमें भरण-पोषण का प्रावधान रखा था: दोषी पति को पत्नी और बच्चों के निर्वाह की व्यवस्था करनी ही होगी। इसके अतिरिक्त, ज़मानत की प्रक्रिया में पीड़ित महिला की बात सुनना अनिवार्य बनाया गया — ताकि उसकी इच्छा और सुरक्षा सर्वोपरि रहे।

यह एक सूक्ष्म और सुविचारित संरचना थी, जो दर्शाती है कि यह क़ानून दंड के लिए नहीं, बल्कि निवारण और सुरक्षा के लिए बनाया गया था। इसका वास्तविक प्रभाव भी यही रहा: अनेक रिपोर्टों के अनुसार, क़ानून बनने के बाद तत्काल तीन तलाक की घटनाओं में उल्लेखनीय गिरावट आई — क्योंकि अब इस प्रथा के क़ानूनी परिणाम थे। यह दर्शाता है कि एक प्रभावी क़ानून केवल दोषियों को दंडित नहीं करता; वह व्यवहार को ही बदल देता है, और इस प्रकार उन घटनाओं को रोकता है जो अन्यथा घटतीं।

तुष्टिकरण-विरोधी दर्शन की आधारशिला

तीन तलाक का यह अध्याय इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस का एक महत्वपूर्ण आयाम है। यह दर्शाता है कि शाह का "तुष्टिकरण नहीं, राष्ट्र-निर्माण" का सिद्धांत किसी समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि समानता के पक्ष में है। वह तर्क जो सात दशकों से चला आ रहा था — कि अल्पसंख्यक समुदायों के "व्यक्तिगत क़ानूनों" को छेड़ना उनके तुष्टिकरण की क़ीमत पर ही संभव है — उसे इस अधिनियम ने उलट दिया। शाह ने प्रस्तुत किया कि सच्चा न्याय समुदाय-विशेष के अल्पकालिक तुष्टिकरण में नहीं, बल्कि हर नागरिक — विशेषकर हर महिला — को समान गरिमा देने में है।

आलोचकों ने तर्क दिया कि यह क़ानून केवल मुस्लिम पुरुषों को दंडित करता है, और एक नागरिक मामले को आपराधिक बनाता है। परंतु सरकार का प्रत्युत्तर स्पष्ट था: सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही असंवैधानिक घोषित एक प्रथा को प्रवर्तन-योग्य बनाने के लिए आपराधिक प्रावधान आवश्यक थे, और भरण-पोषण तथा ज़मानत के सुरक्षा-उपाय आलोचनाओं को संबोधित करते थे। जैसा कि प्रधानमंत्री मोदी ने कहा, यह क़ानून एक "ऐतिहासिक भूल" को सुधारता है और एक "पुरातन और मध्ययुगीन प्रथा" का अंत करता है।

पटेल की प्रतिध्वनि: समानता का साहस

यहाँ पटेल और शाह के बीच की समानता एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण रूप में उभरती है। सरदार पटेल भी अपने समय में सामाजिक सुधार के प्रश्न पर दृढ़ रहे थे, और उन्होंने भी राष्ट्र की एकता और समानता को अल्पकालिक राजनीतिक सुविधा से ऊपर रखा था। जैसे पटेल ने रियासतों के एकीकरण में किसी रूढ़िवादी प्रतिरोध के समक्ष झुकने से इनकार किया था, वैसे ही शाह ने तीन तलाक के प्रश्न पर रूढ़िवादी दबाव के समक्ष झुकने से इनकार किया।

दोनों के लिए, राष्ट्र की समता और हर नागरिक की समान गरिमा एक अनिवार्य सिद्धांत था — कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका सौदा राजनीतिक लाभ के लिए किया जा सके। तीन तलाक का उन्मूलन इसी दृष्टि की एक आधुनिक अभिव्यक्ति था: एक ऐसा निर्णय जो तात्कालिक रूप से कठिन था, किंतु दीर्घकालिक रूप से राष्ट्र के समता-आदर्श को सुदृढ़ करता था।

तीन तलाक का उन्मूलन शाह के "एक राष्ट्र, समान न्याय" के दर्शन का प्रथम पुष्प था। उस दर्शन का अगला, और कहीं अधिक व्यापक, पुष्प था — समान नागरिक संहिता।

अध्याय 11

समान नागरिक संहिता: एक राष्ट्र, एक विधान

यदि तीन तलाक एक विशिष्ट अन्याय का उन्मूलन था, तो समान नागरिक संहिता (यूसीसी) एक व्यापक सिद्धांत की स्थापना है — कि एक राष्ट्र में, हर नागरिक के लिए एक समान विधान हो। यह भारतीय संविधान के एक अधूरे वचन की पूर्णता की दिशा में एक कदम है, और अमित शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का एक केंद्रीय स्तंभ।

संवैधानिक आधार: अनुच्छेद 44

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 44, जो भाग IV (राज्य के नीति-निदेशक तत्वों) में सूचीबद्ध है, राज्य को निर्देश देता है कि वह "भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त करने का प्रयास करे।" परंतु क्रमिक सरकारों ने इसे राजनीतिक रूप से अछूत मानकर टाला।

भाजपा का तर्क — जिसे शाह ने स्पष्ट किया — यह है कि हिंदू संहिता के बाहर के व्यक्तिगत क़ानूनों (विशेषकर मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानून) ने पारिवारिक स्तर पर एक "दो-पटरी" भारतीय नागरिकता उत्पन्न की, जिसने क़ानून के समक्ष समानता के सिद्धांत को खंडित कर दिया। भाजपा की यह माँग जनसंघ के 1951 के घोषणापत्र तक जाती है, और 1967 तक जनसंघ ने स्पष्ट रूप से सभी नागरिकों के लिए विवाह, गोद और उत्तराधिकार को नियंत्रित करने वाली एक समान नागरिक संहिता का संकल्प लिया था।

संविधान-सभा का स्वप्न

अनुच्छेद 44 का अस्तित्व स्वयं इस बात का प्रमाण है कि समान नागरिक संहिता कोई बाद का राजनीतिक आविष्कार नहीं, बल्कि संविधान-निर्माताओं की मूल दृष्टि का अंग थी। संविधान-सभा में डॉ. भीमराव आंबेडकर सहित अनेक प्रमुख निर्माताओं

ने एक समान नागरिक संहिता की आकांक्षा व्यक्त की थी। यह स्वीकार किया गया कि स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात इसे लागू करना व्यवहार्य नहीं होगा — और इसीलिए इसे एक "नीति-निदेशक तत्व" के रूप में रखा गया, अर्थात एक ऐसा लक्ष्य जिसकी ओर राज्य को निरंतर प्रयास करना चाहिए।

शाह का तर्क यहीं केंद्रित होता है: नीति-निदेशक तत्व कोई अलंकारिक आदर्श-वाक्य नहीं हैं, बल्कि क्रियान्वयन के लिए दिए गए दायित्व हैं। संविधान-निर्माताओं ने इसे "प्रयास करे" इसलिए कहा क्योंकि वे जानते थे कि यह एक क्रमिक प्रक्रिया होगी — परंतु प्रक्रिया का अर्थ टालना नहीं, आगे बढ़ना है। पचहत्तर वर्ष तक इस लक्ष्य को छूने तक का प्रयास न करना, शाह के अनुसार, स्वयं संविधान-निर्माताओं की दृष्टि के साथ विश्वासघात था। आंबेडकर ने स्वयं कहा था कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, उसका भाग्य उसे लागू करने वालों पर निर्भर करता है — और शाह इसी "लागू करने" के साहस को अपने राजनीतिक दर्शन का केंद्र बनाते हैं।

उत्तराखंड: प्रथम प्रयोगशाला

मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी की उत्तराखंड सरकार ने 7 फरवरी 2024 को राज्य विधानसभा में **उत्तराखंड समान नागरिक संहिता विधेयक** पारित किया, और 27 जनवरी 2025 से प्रभावी व्यापक नियम अधिसूचित किए। यह संहिता विवाह, तलाक, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, और लिव-इन संबंधों को आच्छादित करती है। यह विवाह के लिए समान आयु (पुरुषों के लिए 21, महिलाओं के लिए 18), पुत्र-पुत्री के लिए समान उत्तराधिकार, और लिव-इन संबंधों के अनिवार्य पंजीकरण की व्यवस्था करती है।

उत्तराखंड का यह कदम शाह की उसी पद्धति का उदाहरण है जो हमने पहले देखी — पहले एक राज्य-स्तरीय प्रयोगशाला, फिर राष्ट्रीय विस्तार।

प्रयोगशाला से प्रतिमान तक

उत्तराखंड के मॉडल का महत्व केवल एक राज्य के क़ानून में नहीं, बल्कि उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिमान में निहित है। यह स्वतंत्र भारत में किसी राज्य द्वारा एक व्यापक समान नागरिक संहिता को वास्तव में लागू करने का प्रथम उदाहरण था।

दशकों तक यह प्रश्न केवल सैद्धांतिक बहस का विषय रहा था — कोई कहता कि यह असंभव है, कोई कहता कि यह विभाजनकारी होगा। उत्तराखंड ने इन आशंकाओं का व्यावहारिक उत्तर दिया: एक कार्यशील, प्रवर्तन-योग्य संहिता बनाकर।

यह पद्धति स्वयं शाह की संगठनात्मक प्रतिभा का प्रतिबिंब है। जैसे उन्होंने गुजरात को अपनी शासन-प्रयोगशाला बनाया था, और जैसे उन्होंने राज्य-दर-राज्य भाजपा का विस्तार किया था, वैसे ही उन्होंने समान नागरिक संहिता को भी एक क्रमिक, राज्य-आधारित रणनीति के रूप में अपनाया। पहले एक राज्य में सिद्ध करना कि यह व्यावहारिक रूप से संभव है; फिर अन्य भाजपा-शासित राज्यों में उसका विस्तार; और अंततः एक राष्ट्रीय प्रतिमान की ओर अग्रसर होना। यह "लंबी पारी" खेलने की उनकी अभिलाक्षणिक शैली थी।

गुजरात और असम: कैस्केडिंग रणनीति

1 दिसंबर 2024 को शाह ने पुनः पुष्टि की कि "भाजपा सरकार हर राज्य में समान नागरिक संहिता लाएगी" और उत्तराखंड की पहल की प्रशंसा की। 27 मई 2026 को, असम विधानसभा द्वारा यूसीसी विधेयक पारित किए जाने के पश्चात, शाह ने असम को बधाई देते हुए कहा: "समान नागरिक संहिता अपनी स्थापना के दिन से ही भाजपा का संकल्प रही है... भाजपा-शासित राज्य सरकारें हर नागरिक के लिए एक समान विधान स्थापित कर रही हैं।" इस प्रकार असम, गुजरात और उत्तराखंड के साथ इस सूची में शामिल हो गया।

एक संकल्प की निरंतरता

असम और गुजरात की पहल पर शाह की प्रतिक्रिया में एक शब्द बार-बार लौटता है — "संकल्प।" यह आकस्मिक नहीं है। शाह के लिए समान नागरिक संहिता कोई चुनावी मुद्दा या तात्कालिक राजनीतिक चाल नहीं है; वह एक सात-दशक पुराने वैचारिक संकल्प की परिणति है, जो जनसंघ के संस्थापक-दिनों से चली आ रही है। जब वे कहते हैं कि यह "स्थापना के दिन से ही भाजपा का संकल्प रही है," तो वे इसे एक राजनीतिक वंश-परंपरा के रूप में प्रस्तुत करते हैं — एक ऐसी वैचारिक प्रतिबद्धता जो पीढ़ियों तक जीवित रही।

यह निरंतरता शाह के दर्शन की एक मूल विशेषता है। जहाँ अनेक राजनीतिक दल अल्पकालिक लाभ के लिए अपने सिद्धांतों को बदलते रहते हैं, वहीं शाह एक ऐसी वैचारिक स्थिरता प्रस्तुत करते हैं जो दशकों तक एक ही दिशा में अग्रसर रहती है। समान नागरिक संहिता का राज्य-दर-राज्य कैस्केड — उत्तराखंड, फिर असम, और गुजरात की घोषित प्रतिबद्धता — इसी धैर्यपूर्ण, चरणबद्ध संकल्प का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

शाह का संवैधानिक तर्क

17 दिसंबर 2024 को राज्यसभा में संविधान की 75वीं वर्षगाँठ पर बहस का उत्तर देते हुए, शाह ने यूसीसी की एक संरचनात्मक रक्षा प्रस्तुत की जो उनके राजनीतिक दर्शन के अनेक धागों को जोड़ती है:

- "मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानून को संविधान अपनाए जाने के पश्चात इस देश में तुष्टिकरण की शुरुआत के रूप में लाया गया।"
- "यदि शरीयत लागू करनी है, तो उसे पूर्ण रूप से लागू करें — आपराधिक क़ानून से उसे चुनिंदा रूप से क्यों हटाया?"
- "यदि वे चश्मे जिनसे हम संविधान को देखते हैं, विदेशी हैं, तो सच्ची भारतीयता कभी दिखाई नहीं देगी।"

शाह का मूल तर्क यह है कि यूसीसी कोई सांस्कृतिक थोपा-जाना नहीं, बल्कि अनुच्छेद 14 और 21 (समानता और गरिमापूर्ण जीवन) की संवैधानिक पूर्णता है। और उत्तराखंड-गुजरात-असम का क्रम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

"विदेशी चश्मे" का रूपक

शाह के तर्कों में जो वाक्य सर्वाधिक स्मरणीय है, वह "विदेशी चश्मे" का रूपक है। इस रूपक में शाह एक गहरी वैचारिक बात कह रहे थे — कि भारत के अनेक नीति-निर्माता और बुद्धिजीवी अपने राष्ट्र की समस्याओं को आयातित वैचारिक ढाँचों के माध्यम से देखते हैं, और इसी कारण भारतीय यथार्थ की मूल प्रकृति उनसे ओझल

रह जाती है। उनका तर्क था कि समान नागरिक संहिता को "अल्पसंख्यक-विरोधी" मानने की प्रवृत्ति स्वयं इसी "विदेशी चश्मे" की उपज है।

शाह के अनुसार, यदि भारत को उसकी अपनी सभ्यतागत दृष्टि से देखा जाए, तो समानता और एकरूपता कोई विदेशी अवधारणाएँ नहीं, बल्कि भारतीय एकता की स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ हैं। एक राष्ट्र जो "विविधता में एकता" का उद्घोष करता है, उसमें नागरिक-समानता का सिद्धांत किसी समुदाय की पहचान के विरुद्ध नहीं, बल्कि राष्ट्र की साझा नागरिकता के पक्ष में है। यह रूपक शाह की उस व्यापक सांस्कृतिक-राष्ट्रवादी दृष्टि का अंग था जिसमें भारत की समस्याओं का समाधान भारत की अपनी सभ्यतागत चेतना से ही खोजा जाना चाहिए।

तर्क का सूक्ष्म विश्लेषण

शाह के राज्यसभा-तर्क का दूसरा बिंदु विशेष रूप से तीक्ष्ण है, और उस पर ठहरना आवश्यक है। उनका प्रश्न था: यदि किसी समुदाय के लिए धार्मिक विधि लागू करनी ही है, तो उसे चुनिंदा रूप से क्यों लागू किया जाता है? आपराधिक मामलों में तो सभी नागरिक एक ही दंड-संहिता के अधीन हैं — चोरी, हत्या या धोखाधड़ी के लिए सभी पर एक ही क़ानून लागू होता है। फिर केवल विवाह, तलाक और उत्तराधिकार जैसे पारिवारिक मामलों में ही पृथक व्यक्तिगत क़ानून क्यों?

इस प्रश्न में शाह एक गहरी असंगति की ओर संकेत करते हैं। उनका तर्क है कि यह चयनात्मकता स्वयं ही एक तार्किक अंतर्विरोध है — एक ऐसी व्यवस्था जो सुविधानुसार कभी एक समान विधि और कभी पृथक विधि को स्वीकार करती है। समान नागरिक संहिता इस अंतर्विरोध को समाप्त करती है, इसे एक सुसंगत सिद्धांत में बदलकर: जैसे आपराधिक क़ानून सबके लिए एक है, वैसे ही नागरिक क़ानून भी सबके लिए एक हो। यह तर्क समानता के संवैधानिक सिद्धांत को उसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाता है।

विधि आयोग और संवैधानिक बहस

समान नागरिक संहिता का प्रश्न दशकों से भारतीय संवैधानिक बहस के केंद्र में रहा है। 21वें विधि आयोग ने 2018 में पारिवारिक क़ानून सुधार पर एक परामर्श-पत्र

जारी किया, जिसमें कहा गया कि यूसीसी "वर्तमान संदर्भ में न तो व्यवहार्य है, न ही वांछनीय" — परंतु साथ ही उसने व्यक्तिगत-क़ानूनों की विसंगतियों को भी स्वीकार किया।

भाजपा का तर्क है कि यह परामर्श-पत्र इस मुद्दे को अध्ययन के लिए खुला छोड़ता है, बंद नहीं करता। संविधान का अनुच्छेद 44 एक स्पष्ट निर्देश देता है, और 75 वर्षों तक इसे टालना — भाजपा के अनुसार — स्वयं संविधान-निर्माताओं की दृष्टि के साथ अन्याय है। यह तर्क शाह की उस व्यापक दृष्टि का अंग है कि संविधान के नीति-निदेशक तत्व केवल आदर्श-वाक्य नहीं, बल्कि क्रियान्वयन के लक्ष्य हैं।

हिंदू संहिता विधेयक का ऐतिहासिक संदर्भ

यहाँ एक ऐतिहासिक विडंबना का ईमानदार उल्लेख आवश्यक है। 1950 के दशक में, जब हिंदू संहिता विधेयक के माध्यम से हिंदू व्यक्तिगत क़ानूनों में सुधार किया गया, तो उसका उद्देश्य हिंदू समाज में लैंगिक समानता लाना था। परंतु उसी प्रकार के सुधार अन्य समुदायों के व्यक्तिगत क़ानूनों में नहीं किए गए। इस प्रकार एक "दो-पटरी" व्यवस्था बन गई — एक समुदाय में सुधार, दूसरों में यथास्थिति।

शाह का तर्क यह है कि समान नागरिक संहिता इस ऐतिहासिक असंगति को दूर करती है। यदि एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में लैंगिक समानता एक सार्वभौमिक मूल्य है, तो वह सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होना चाहिए — किसी एक समुदाय पर नहीं, बल्कि सब पर। यही "एक राष्ट्र, एक विधान" के दर्शन का मूल है: समानता का सिद्धांत किसी समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि सबके लिए समान।

एक ईमानदार विसंगति का सामना

यहाँ ऐतिहासिक ईमानदारी की माँग है कि एक तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाए: हिंदू संहिता विधेयक के समय, उस वैचारिक परिवार के कुछ तत्वों ने — जिससे आज की भाजपा अपनी वंश-परंपरा जोड़ती है — स्वयं उन सुधारों का विरोध किया था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, और इसे छिपाने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

परंतु इसी तथ्य में शाह की दृष्टि की परिपक्वता भी दिखाई देती है। एक राजनीतिक आंदोलन का मूल्यांकन उसके किसी एक ऐतिहासिक क्षण से नहीं, बल्कि उसके दीर्घकालिक प्रक्षेप-पथ से होता है। आज भाजपा और शाह जिस समान नागरिक संहिता की वकालत करते हैं, वह वस्तुतः हिंदू संहिता विधेयक के उस मूल लैंगिक-समता-आदर्श का सार्वभौमिक विस्तार है — एक समुदाय तक सीमित सुधार को सभी समुदायों तक ले जाना। इस अर्थ में, शाह की यूसीसी-वकालत उस आरंभिक संकोच का परिमार्जन है, न कि उसकी निरंतरता। यह एक राजनीतिक विचारधारा की उस क्षमता को दर्शाती है जो समय के साथ अपने आदर्शों को परिष्कृत और विस्तृत कर सकती है।

लिव-इन पंजीकरण और महिला-सुरक्षा

उत्तराखंड की समान नागरिक संहिता का एक विशेष रूप से चर्चित प्रावधान लिव-इन संबंधों का अनिवार्य पंजीकरण है। आलोचकों ने इसे निजता में हस्तक्षेप बताया। परंतु समर्थकों का तर्क है कि यह प्रावधान वस्तुतः महिलाओं की सुरक्षा के लिए है — ताकि लिव-इन संबंधों में रहने वाली महिलाओं को परित्याग और शोषण से क़ानूनी सुरक्षा मिल सके।

मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी ने इस संहिता को "महिलाओं के अधिकारों के लिए एक मील का पत्थर" बताया, जो विवाह, भरण-पोषण और उत्तराधिकार में समानता सुनिश्चित करेगा। यह दर्शाता है कि शाह और भाजपा के लिए समान नागरिक संहिता का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक एकरूपता नहीं, बल्कि लैंगिक न्याय और समानता है।

एक राष्ट्र की ओर

समान नागरिक संहिता शाह के "एक राष्ट्र, एक विधान" के दर्शन का सबसे व्यापक अभिव्यक्ति है। यह उसी सूत्र का विस्तार है जो अनुच्छेद 370 और तीन तलाक में दिखाई दिया — कि भारत की एकता केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि क़ानूनी और नागरिक भी होनी चाहिए। और यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह दर्शन धार्मिक भेदभाव पर नहीं, बल्कि समानता के सिद्धांत पर आधारित है — हर नागरिक के लिए, चाहे उसका धर्म कोई भी हो, एक समान विधान।

राष्ट्र-निर्माण के इस दर्शन का अगला आयाम मानवीय करुणा का था — उन शरणार्थियों को न्याय देना जिन्होंने धार्मिक उत्पीड़न से भागकर भारत में शरण ली थी। वह कथा नागरिकता संशोधन अधिनियम की है।

अध्याय 12

नागरिकता संशोधन अधिनियम: शरणार्थियों को न्याय

राष्ट्र-निर्माण का एक आयाम सीमाओं के भीतर की एकता है; एक अन्य आयाम है — मानवीय करुणा, उन लोगों के प्रति जिन्होंने धार्मिक उत्पीड़न से बचकर भारत की शरण ली। नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए), 2019 इसी करुणा का विधायी रूप था — और साथ ही, अमित शाह की अडिगता का एक सबसे स्पष्ट उदाहरण।

नेहरू-लियाक़त की अधूरी प्रतिज्ञा

इस विधेयक का मूल पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफ़ग़ानिस्तान में धार्मिक अल्पसंख्यकों के अनसुलझे संकट में निहित था, जिनकी जनसंख्या 1947 के 23% से घटकर आज लगभग 3% रह गई — प्रायः उत्पीड़न के कारण। शाह और भाजपा ने तर्क दिया कि 1950 के नेहरू-लियाक़त समझौते ने इन अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं की, और यह एक मानवीय दायित्व छोड़ गया जिसे संबोधित करने का भारत सरकार को न केवल अधिकार, बल्कि कर्तव्य भी था।

क़ानूनी तंत्र

सीएए ने नागरिकता अधिनियम, 1955 में संशोधन कर अफ़ग़ानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आए हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदायों के लिए — जो 31 दिसंबर 2014 को या उससे पहले भारत आए — एक त्वरित नागरिकता-मार्ग प्रदान किया। प्राकृतिककरण के लिए निवास की अनिवार्यता 11 वर्ष से घटाकर 6 वर्ष कर दी गई। यह अधिनियम किसी भी मौजूदा भारतीय नागरिक (मुसलमानों सहित) की नागरिकता न तो छीनता है, न ही प्रभावित करता है। नियम 11 मार्च 2024 को अधिसूचित किए गए।

एक संकीर्ण और सुपरिभाषित प्रावधान

सीएए के तंत्र को समझने में सबसे महत्वपूर्ण बात उसकी सीमा है — वह क्या करता है, और इससे भी अधिक, वह क्या नहीं करता। यह अधिनियम केवल तीन विशिष्ट देशों के, केवल छह विशिष्ट धार्मिक समुदायों के, और केवल एक विशिष्ट तिथि — 31 दिसंबर 2014 — तक भारत आने वाले लोगों पर लागू होता है। यह कोई खुला, अनिश्चितकालीन प्रावधान नहीं है, बल्कि एक संकीर्ण रूप से परिभाषित, एकबारगी मानवीय राहत है।

इस संकीर्णता का तार्किक आधार स्पष्ट है: यह उन लोगों के लिए है जो पहले ही उत्पीड़न से भागकर भारत में आ चुके हैं और वर्षों से यहाँ रह रहे हैं, परंतु क़ानूनी नागरिकता के अभाव में अधर में लटके हुए हैं। निवास की अनिवार्यता को 11 वर्ष से घटाकर 6 वर्ष करना भी इसी मानवीय तर्क का अंग था — क्योंकि ये लोग सामान्य प्रवासी नहीं, बल्कि उत्पीड़न के शरणार्थी थे, जिनके पास लौटने के लिए कोई सुरक्षित मातृभूमि नहीं थी। और सबसे महत्वपूर्ण: यह अधिनियम किसी भी व्यक्ति से नागरिकता छीनता नहीं — यह केवल नागरिकता देता है। शाह ने इसी बिंदु को बार-बार दोहराया, क्योंकि यही वह तथ्य था जिसे विरोध की आँधी में सबसे अधिक धुँधला किया जा रहा था।

संसदीय यात्रा

यह विधेयक गृह मंत्री अमित शाह द्वारा 9 दिसंबर 2019 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। यह लोकसभा में 10 दिसंबर को 311 के मुक़ाबले 80 मतों से, और राज्यसभा में 11 दिसंबर को 125 के मुक़ाबले 105 मतों से पारित हुआ। राष्ट्रपति की स्वीकृति 12 दिसंबर 2019 को मिली, और यह 10 जनवरी 2020 को प्रभावी हुआ।

संसद के पटल पर एक योद्धा

संसद की उन दो दिनों की बहस को इतिहास में शाह के सबसे प्रभावशाली विधायी प्रदर्शनों में से एक के रूप में याद किया जाएगा। राज्यसभा का मतभेद-अंतर

अपेक्षाकृत संकीर्ण था — 125 के मुक़ाबले 105 — जो दर्शाता है कि यह विधेयक उच्च सदन में कोई आसान विजय नहीं था। यहीं पर शाह का संसदीय कौशल अपने चरम पर दिखाई दिया: घंटों तक तीखी आलोचना का सामना करते हुए, उन्होंने प्रत्येक आपत्ति का बिंदुवार उत्तर दिया, ऐतिहासिक तथ्यों और संवैधानिक सिद्धांतों का हवाला दिया, और अंततः आवश्यक बहुमत जुटाया।

यह उनकी उस अभिलाक्षणिक शैली का प्रदर्शन था जिसे पर्यवेक्षकों ने "विस्तार में निपुण" व्यक्ति कहा है। शाह किसी विधेयक को केवल भावनात्मक अपील पर नहीं, बल्कि तथ्यात्मक और संवैधानिक आधार पर खड़ा करते हैं। सीएए की बहस में उन्होंने जनसांख्यिकीय आँकड़े, ऐतिहासिक समझौते, और संवैधानिक विधिशास्त्र — सभी को एक सुसंगत तर्क-संरचना में पिरोया। यह केवल एक राजनीतिक विजय नहीं थी; यह एक विधायी शिल्प का प्रदर्शन था।

शाह की चार-स्तंभीय रक्षा

दोनों सदनों में शाह ने अपनी रक्षा चार स्तंभों पर खड़ी की:

1. **मानवीय राहत**: यह विधेयक "लाखों शरणार्थियों की पीड़ा का अंत करेगा जो उत्पीड़न के शिकार हैं।" शाह ने इसे उन लोगों के लिए एक नैतिक "दया का कार्य" बताया जिन्होंने "दशकों तक धार्मिक उत्पीड़न सहा।"

2. **संवैधानिक अनुकूलता**: "सीएबी संविधान के किसी भी अनुच्छेद से टकराता नहीं... यह विधेयक न तो अनुच्छेद *14* का उल्लंघन करता है, न ही अनुच्छेद *21* और *25* का।" उन्होंने धार्मिक-अल्पसंख्यक वर्गीकरण को अनुच्छेद 14 के अंतर्गत एक "युक्तियुक्त वर्गीकरण" बताया।

3. **शरणार्थी बनाम घुसपैठिया का भेद**: "हम शरणार्थियों — जो अपना धर्म और सम्मान बचाने वाले पीड़ित लोग हैं — और घुसपैठियों — जो अवैध रूप से प्रवेश करते हैं — के बीच भेद करते हैं।"

4. **पड़ोसी देशों में मुसलमानों की स्थिति पर:** शाह ने रेखांकित किया कि उन तीन राष्ट्रों के संविधान मुसलमानों को अल्पसंख्यक दर्जा नहीं देते।

राज्यसभा में 11 दिसंबर को उन्होंने दोहराया: "मोदी सरकार जिस एकमात्र धर्म का पालन करती है, वह भारत का संविधान है" और "यह विधेयक भारत के किसी भी अल्पसंख्यक के विरुद्ध नहीं है।"

घटते अल्पसंख्यक: एक मानवीय त्रासदी

सीएए के पीछे एक स्पष्ट मानवीय तथ्य था। 1947 में, पाकिस्तान (तत्कालीन पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान) में धार्मिक अल्पसंख्यकों — हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई — की जनसंख्या लगभग 23% थी। आज यह घटकर लगभग 3% रह गई है। यह गिरावट केवल जनसांख्यिकीय नहीं है; यह उत्पीड़न, बलात् धर्मांतरण, और हिंसा की एक लंबी कथा का परिणाम है।

इन अल्पसंख्यकों में से अनेक ने वर्षों तक भारत में शरण ली, परंतु क़ानूनी नागरिकता के अभाव में वे एक अनिश्चित जीवन जीते रहे — न पूर्ण नागरिक, न शरणार्थी। सीएए ने इस मानवीय गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया, उन्हें एक त्वरित नागरिकता-मार्ग प्रदान करके। शाह ने इसे एक "दया का कार्य" बताया — एक ऐसा कार्य जो उन लोगों को सम्मान और सुरक्षा देता है जिन्होंने धर्म के नाम पर दशकों तक उत्पीड़न सहा।

आँकड़ों के पीछे के चेहरे

23% से 3% — यह केवल एक सांख्यिकीय गिरावट नहीं है; इसके पीछे लाखों मानवीय कहानियाँ हैं। यह वे परिवार हैं जिनकी बेटियों का अपहरण कर बलात् धर्मांतरण कराया गया; वे मंदिर और गुरुद्वारे जो नष्ट किए गए; वे व्यापारी जिनकी संपत्ति छीन ली गई; वे समुदाय जो अपनी पूजा-पद्धति के कारण निरंतर भय में जीते रहे। इन लोगों के पास भागने के लिए एक ही स्थान था — भारत, जो उनकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मातृभूमि थी।

शाह ने इस तर्क को एक ऐतिहासिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत किया। विभाजन के समय, जब रेखा खींची गई, तो लाखों अल्पसंख्यक उस ओर रह गए जहाँ वे क्रमशः उत्पीड़न के शिकार होते गए। भारत, एक सभ्यतागत राष्ट्र के रूप में, इन उत्पीड़ितों के प्रति एक नैतिक दायित्व रखता था। सीएए उसी दायित्व की देर से दी गई पूर्ति थी — एक ऐसा क़दम जिसके बारे में शाह ने कहा कि यदि यह पाँच दशक पहले उठा लिया गया होता, तो असंख्य लोगों की पीड़ा टाली जा सकती थी।

नेहरू-लियाक़त समझौते की अधूरी प्रतिज्ञा

शाह ने सीएए को एक ऐतिहासिक संदर्भ में रखा — 1950 के नेहरू-लियाक़त समझौते का। उस समझौते में भारत और पाकिस्तान ने अपने-अपने अल्पसंख्यकों की रक्षा का वचन दिया था। भारत ने अपने वचन का पालन किया — भारतीय मुसलमानों को पूर्ण नागरिक अधिकार मिले। परंतु पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की स्थिति निरंतर बिगड़ती गई।

शाह का तर्क था कि यदि पाकिस्तान ने अपने वचन का पालन नहीं किया, तो भारत का यह नैतिक दायित्व बनता है कि वह उन उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को शरण दे जो उस अधूरी प्रतिज्ञा के शिकार हुए। उन्होंने कहा कि यदि यह क़ानून पचास वर्ष पहले आ गया होता, तो यह स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती।

“युक्तियुक्त वर्गीकरण” का संवैधानिक तर्क

सीएए के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि यह धर्म के आधार पर भेदभाव करता है, और इस प्रकार अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) का उल्लंघन करता है। शाह का प्रत्युत्तर एक सूक्ष्म संवैधानिक तर्क पर आधारित था — “युक्तियुक्त वर्गीकरण” (reasonable classification) का सिद्धांत।

भारतीय संवैधानिक विधिशास्त्र के अनुसार, अनुच्छेद 14 समान परिस्थिति वाले लोगों के साथ समान व्यवहार की माँग करता है — परंतु यह भिन्न परिस्थिति वाले समूहों के बीच युक्तियुक्त वर्गीकरण की अनुमति देता है। शाह ने तर्क दिया कि उन तीन इस्लामी राष्ट्रों — पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफ़ग़ानिस्तान — में मुसलमान बहुसंख्यक हैं, और इसलिए वे “धार्मिक उत्पीड़न के शिकार

अल्पसंख्यक" की श्रेणी में नहीं आते। इस प्रकार, उत्पीड़ित धार्मिक अल्पसंख्यकों को त्वरित नागरिकता देना एक युक्तियुक्त वर्गीकरण है, मनमाना भेदभाव नहीं।

वर्गीकरण की तर्क-संगति

युक्तियुक्त वर्गीकरण के सिद्धांत को थोड़ा और गहराई से समझना उपयोगी है, क्योंकि यही सीएए की संवैधानिक रक्षा का हृदय है। भारतीय न्यायशास्त्र में यह सुस्थापित है कि समानता का अर्थ यांत्रिक एकरूपता नहीं है — समान को समान, और असमान को असमान मानना ही वास्तविक समानता है। एक क़ानून तब वैध वर्गीकरण करता है जब (एक) वह वर्गीकरण एक स्पष्ट, बुद्धिगम्य आधार पर हो, और (दो) उस आधार का क़ानून के उद्देश्य से तार्किक संबंध हो।

शाह ने तर्क दिया कि सीएए दोनों कसौटियों पर खरा उतरता है। वर्गीकरण का आधार स्पष्ट है — वे लोग जो उन तीन देशों में धार्मिक बहुसंख्यक नहीं हैं और इसलिए धार्मिक उत्पीड़न के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील हैं। और इस आधार का क़ानून के उद्देश्य से सीधा संबंध है — उद्देश्य है धार्मिक उत्पीड़न के शिकार लोगों को राहत देना। चूँकि उन इस्लामी गणराज्यों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं और उन्हें धार्मिक आधार पर राज्यीय उत्पीड़न का सामना नहीं करना पड़ता, इसलिए उनका इस विशिष्ट राहत-श्रेणी में न होना भेदभाव नहीं, बल्कि एक तार्किक भेद है। यह तर्क सीएए को मनमानी का नहीं, बल्कि सुविचारित वर्गीकरण का उदाहरण बनाता है।

"चाहे जो हो जाए": अडिगता का प्रतीक

सीएए के पारित होने के पश्चात देश भर में विरोध-प्रदर्शन हुए। और यहीं पर अमित शाह की वह विशेषता अपने सबसे स्पष्ट रूप में प्रकट हुई जो इस पुस्तक का केंद्रीय विषय है — अडिगता।

17 दिसंबर 2019 को, राष्ट्रव्यापी विरोध-प्रदर्शनों की पृष्ठभूमि में, दिल्ली के द्वारका में एक रैली को संबोधित करते हुए शाह ने कहा: "चाहे जो हो जाए, मोदी सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि इन शरणार्थियों को भारतीय नागरिकता मिले और वे सम्मान के साथ भारतीयों की तरह रहें।" उन्होंने आगे कहा: "मैं अपने छात्रों और

मुस्लिम भाइयों-बहनों से कहना चाहता हूँ कि डरने की कोई बात नहीं है। किसी की भी भारतीय नागरिकता नहीं जाएगी।"

यह "चाहे जो हो जाए" — यह वाक्यांश शाह के समूचे राजनीतिक दर्शन का सार है। आलोचना की आँधी में, विरोध-प्रदर्शनों के बीच, उन्होंने न तो विधेयक वापस लिया, न माफ़ी माँगी; उन्होंने दृढ़ता से अपना मानवीय तर्क दोहराया। एक राष्ट्र-निर्माता की यही पहचान है — कि वह अल्पकालिक राजनीतिक दबाव के सामने अपने दीर्घकालिक संकल्प से विचलित नहीं होता।

शाहीन बाग़ और संयम का साहस

विरोध का सबसे प्रतीकात्मक केंद्र दिल्ली का शाहीन बाग़ बना, जहाँ महीनों तक धरना चला। यह एक ऐसा क्षण था जो किसी भी सरकार के लिए परीक्षा की घड़ी होता है — जब सड़क का दबाव अपने चरम पर हो, और मीडिया तथा अंतरराष्ट्रीय आलोचना का स्वर तीव्र हो। ऐसे क्षणों में राजनीतिक नेतृत्व के पास दो मार्ग होते हैं: या तो दबाव के समक्ष झुककर क़ानून को निरस्त या स्थगित कर देना, या अपने संकल्प पर दृढ़ रहना और साथ ही संवाद का द्वार खुला रखना।

शाह ने दूसरा मार्ग चुना। उन्होंने न तो विधेयक वापस लिया, न ही प्रदर्शनकारियों के प्रति शत्रुतापूर्ण भाषा का प्रयोग किया। इसके बजाय, उन्होंने बार-बार आश्वस्त किया कि किसी भारतीय नागरिक की नागरिकता नहीं जाएगी, और प्रदर्शनकारियों से अपील की कि वे क़ानून के वास्तविक प्रावधानों को पढ़ें, न कि अफ़वाहों पर विश्वास करें। यह संयम और दृढ़ता का एक विरल संयोजन था — एक ऐसा नेतृत्व जो अपने संकल्प से डिगता नहीं, परंतु आक्रोश को आक्रोश से उत्तर भी नहीं देता। यही शाह की अडिगता का परिपक्व रूप था।

करुणा और अडिगता का संगम

सीएए शाह की राष्ट्र-निर्माण-दृष्टि के एक विशिष्ट संयोग का प्रतीक है — करुणा और अडिगता का संगम। एक ओर, यह उन उत्पीड़ितों के प्रति करुणा थी जिन्होंने धर्म के नाम पर सब कुछ खोया था; दूसरी ओर, यह उस करुणा को विधि में परिणत करने

का अडिग संकल्प था, चाहे राजनीतिक मूल्य कितना भी अधिक क्यों न हो। प्रायः नेता या तो करुणावान होते हैं या दृढ़; शाह ने दोनों को एक साथ साधा।

यह संयोजन पटेल की उस छवि की प्रतिध्वनि करता है जिसे "लौह पुरुष" कहा गया — एक ऐसा नेता जिसका हृदय कोमल किंतु संकल्प इस्पात-सा दृढ़ था। पटेल ने भी विभाजन के समय शरणार्थियों के पुनर्वास का दायित्व अडिगता के साथ निभाया था। सीएए के माध्यम से शाह ने उसी परंपरा को आगे बढ़ाया — एक ऐसा क़दम जो मानवीय करुणा से प्रेरित था, परंतु जिसे लागू करने में उन्होंने इस्पात-सी दृढ़ता दिखाई।

सीएए शाह की करुणा और अडिगता, दोनों का प्रमाण था। इसके बाद का अध्याय उनकी एक और दीर्घकालिक दृष्टि का है — आंतरिक सुरक्षा के सबसे पुराने ख़तरे, नक्सलवाद, के विरुद्ध निर्णायक अभियान का।

अध्याय 13

नक्सलवाद का अंत: विकास और सुरक्षा

राष्ट्र-निर्माण का एक अनिवार्य आयाम है — आंतरिक सुरक्षा। और स्वतंत्र भारत के सबसे पुराने और सबसे रक्तरंजित आंतरिक ख़तरों में से एक रहा है — वामपंथी उग्रवाद, अर्थात् नक्सलवाद। अमित शाह के गृह मंत्रित्व-काल का एक सबसे ठोस और मापनीय रिकॉर्ड इसी ख़तरे के विरुद्ध निर्णायक अभियान का है।

1967 की एक समस्या

वामपंथी उग्रवाद की उत्पत्ति 1967 के नक्सलबाड़ी विद्रोह (पश्चिम बंगाल) से हुई। 2010 तक भारत ने अपने चरम पर 1,005 वामपंथी-उग्रवाद-संबंधी मौतें दर्ज कीं। चरम पर मध्य और पूर्वी भारत के 200 से अधिक ज़िले प्रभावित श्रेणी में थे। शाह के नेतृत्व में गृह मंत्रालय ने इसे एक राष्ट्रीय-एकीकरण की समस्या के रूप में प्रस्तुत किया, जिसके समाधान के लिए सुरक्षा और विकास, दोनों एक साथ आवश्यक थे।

आधी सदी का रक्तरंजित अध्याय

नक्सलबाड़ी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक, वामपंथी उग्रवाद ने भारत के एक विशाल भू-भाग को अपनी चपेट में ले रखा था — जिसे “लाल गलियारा” कहा जाता था, जो बिहार और झारखंड से लेकर छत्तीसगढ़, ओडिशा और आंध्र प्रदेश तक फैला हुआ था। यह केवल एक क़ानून-व्यवस्था की समस्या नहीं थी; यह राज्य की संप्रभुता को ही एक प्रत्यक्ष चुनौती थी। इन क्षेत्रों में राज्य की उपस्थिति इतनी क्षीण हो गई थी कि उग्रवादी संगठन समानांतर “जन-अदालतें” चलाते, अपना “कर” वसूलते, और विकास-परियोजनाओं को बलपूर्वक रोकते थे।

इन क्षेत्रों में जो नागरिक सबसे अधिक पीड़ित थे, वे प्रायः वही जनजातीय और निर्धन समुदाय थे जिनके नाम पर उग्रवाद चलाया जाता था। सड़कें नहीं बनतीं

क्योंकि उन्हें उड़ा दिया जाता; स्कूल बंद रहते क्योंकि उन पर क़ब्ज़ा कर लिया जाता; और विकास का प्रत्येक प्रयास हिंसा से अवरुद्ध होता। यही विरोधाभास शाह के विश्लेषण का केंद्र बना — कि नक्सलवाद विकास की कमी से उपजता था, और फिर उसी विकास को रोककर अपने अस्तित्व को बनाए रखता था। इस दुष्चक्र को तोड़ना ही असली चुनौती थी।

"समाधान" सिद्धांत और मार्च 2026 का लक्ष्य

शाह का हस्ताक्षर-सिद्धांत **समाधान (SAMADHAN)** ढाँचा है — एक संक्षिप्त रूप जो आक्रामक रणनीति, कार्रवाई-योग्य गुप्तचर सूचना, डैशबोर्ड-आधारित निगरानी, और नई प्रौद्योगिकी के अंगीकरण को आच्छादित करता है। इसके साथ एक चार-आयामी रणनीति जुड़ी है जो सुरक्षा-अभियान, विकास-कार्य, अधिकार-आधारित शासन और सामुदायिक लामबंदी को एकीकृत करती है। शाह ने एक सार्वजनिक समय-सीमा निर्धारित की: *"मार्च 2026 तक नक्सल-मुक्त भारत!"*

एक समय-सीमा का साहस

किसी जटिल, दशकों पुरानी समस्या के लिए एक सार्वजनिक समय-सीमा घोषित करना अपने आप में एक राजनीतिक साहस का कार्य है। अधिकांश नेता ऐसे संवेदनशील मामलों में अस्पष्ट, गैर-प्रतिबद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं, ताकि यदि लक्ष्य पूरा न हो तो उत्तरदायित्व से बचा जा सके। शाह ने इसके विपरीत मार्ग चुना: उन्होंने एक स्पष्ट तिथि — मार्च 2026 — सार्वजनिक रूप से घोषित कर दी, और इस प्रकार स्वयं को और अपने मंत्रालय को उस लक्ष्य के प्रति जवाबदेह बना दिया।

यह शाह की उस प्रबंधन-शैली का प्रतीक है जिसमें वे अमूर्त लक्ष्यों को ठोस, मापनीय, समयबद्ध उद्देश्यों में बदलते हैं। एक समय-सीमा केवल एक राजनीतिक घोषणा नहीं होती; वह समूचे प्रशासनिक तंत्र के लिए एक संगठनात्मक प्रेरक-शक्ति बन जाती है। जब लक्ष्य और समय-सीमा दोनों स्पष्ट हों, तो हर एजेंसी, हर राज्य पुलिस बल, और हर विकास-विभाग को अपनी भूमिका और गति का बोध होता है। यही "समाधान" ढाँचे की आत्मा थी — एक स्पष्ट गंतव्य के साथ संगठित प्रयास।

ज़िलों के सिकुड़ने का प्रमाण

इस रणनीति का सबसे ठोस प्रमाण प्रभावित ज़िलों की संख्या में नाटकीय गिरावट है:

वर्ष	प्रभावित ज़िले
2010 (चरम)	200+
अप्रैल 2018	126 → 90
जुलाई 2021	70
अप्रैल 2024	38
2025	18 → 11
मार्च 2026 (लक्ष्य)	शून्य की ओर

यह लगभग 15 वर्षों में प्रभावित ज़िलों में 90% से अधिक की कमी है। सर्वाधिक-प्रभावित ज़िले 12 से घटकर 3 रह गए।

आँकड़ों की कहानी

इन आँकड़ों को केवल एक तालिका के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रगति-वक्र के रूप में पढ़ना चाहिए। 2010 में जब 200 से अधिक ज़िले प्रभावित थे, तब यह कल्पना करना भी कठिन था कि एक दशक के भीतर यह संख्या इकाई के अंकों तक सिमट जाएगी। 126 से 90, फिर 70, फिर 38, और अंततः 18 से 11 — यह गिरावट एक रैखिक नहीं, बल्कि निरंतर-त्वरित प्रक्रिया थी, जो दर्शाती है कि रणनीति समय के साथ अधिक प्रभावी होती गई।

सर्वाधिक-प्रभावित ज़िलों का 12 से 3 तक सिमटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि ये वे क्षेत्र थे जहाँ उग्रवाद सबसे गहराई तक जड़ें जमा चुका था। इन कठिनतम क्षेत्रों में सफलता ही वास्तविक परीक्षा थी — और यही वह क्षेत्र है जहाँ "समाधान" ढाँचे के सुरक्षा-विकास युग्मन ने अपना सर्वाधिक प्रभाव दिखाया।

आँकड़ों की यह कहानी एक केंद्रीय बिंदु को रेखांकित करती है: यह कोई संयोग नहीं, बल्कि एक सुनियोजित, निरंतर निगरानी की जाने वाली रणनीति का परिणाम था।

आत्मसमर्पण की लहर और सुरक्षा-अभियान

प्रमुख सुरक्षा-उपलब्धियों में शामिल हैं: मार्च 2025 में बीजापुर और कांकेर में 22 नक्सलियों, तथा सुकमा में 16 नक्सलियों का सफ़ाया। आत्मसमर्पण की संख्या भी उल्लेखनीय रही — दिसंबर 2023 में 1,045, और 2024 में 881। बीते एक दशक में 8,000 से अधिक नक्सलियों ने हिंसा का मार्ग छोड़ा। एक दशक में 15 से अधिक शीर्ष नक्सली नेता निष्प्रभावी किए गए।

हताहतों की प्रवृत्ति नाटकीय है: कुल वामपंथी-उग्रवाद-संबंधी मौतें 2010 के 1,005 से घटकर 2024 में 150 रह गईं; 2022 में, तीस वर्षों में पहली बार, यह संख्या 100 से नीचे आई।

आत्मसमर्पण: विचारधारा की पराजय

आत्मसमर्पण के आँकड़ों का महत्व केवल संख्यात्मक नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक भी है। जब एक दशक में 8,000 से अधिक उग्रवादी स्वेच्छा से हिंसा का मार्ग त्याग देते हैं, तो यह केवल एक सैन्य पराजय नहीं — यह विचारधारा की पराजय है। बंदूक से किसी को मारा जा सकता है, परंतु आत्मसमर्पण के लिए विश्वास का परिवर्तन आवश्यक है — यह विश्वास कि मुख्यधारा का जीवन हिंसा के मार्ग से बेहतर है।

यही "समाधान" रणनीति का गहनतम आयाम था। दिसंबर 2023 में 1,045 और 2024 में 881 आत्मसमर्पण इस बात का प्रमाण हैं कि राज्य ने न केवल बल का प्रयोग किया, बल्कि एक विश्वसनीय वैकल्पिक मार्ग भी प्रस्तुत किया — पुनर्वास, रोज़गार, और सम्मानजनक जीवन का। जब विकास इन क्षेत्रों तक पहुँचा, सड़कें बनीं, स्कूल खुले, और रोज़गार के अवसर उत्पन्न हुए, तो उग्रवाद की वैचारिक अपील स्वयं ही क्षीण होती गई। हताहतों का 1,005 से 150 तक घटना और 2022 में तीस वर्षों में पहली बार 100 से नीचे आना — ये आँकड़े एक ऐसे राष्ट्र की कहानी कहते हैं जो धीरे-धीरे अपनी आंतरिक शांति पुनः प्राप्त कर रहा था।

विकास और सुरक्षा का युग्मन

शाह ने स्पष्ट रूप से नक्सलवाद को एक विकास-समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जो विचारधारा के आवरण में छिपी थी। अवसंरचना का लेखा-जोखा प्रभावशाली है: प्रभावित ज़िलों में 14,618 किलोमीटर सड़कें बनाई गईं; 7,768 मोबाइल टावर लगाए गए; 1,007 बैंक शाखाएँ और 937 एटीएम खोले गए; 5,731 नए डाकघर; 48 आईटीआई, 61 कौशल-विकास केंद्र, और 178 एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय। 2 अक्टूबर 2024 को जनजातीय उत्थान के लिए "धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान" आरंभ किया गया।

यह "संपूर्ण-शासन" (whole-of-government) दृष्टिकोण गृह मंत्रालय, जनजातीय मामलों के मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय और राज्य पुलिस बलों को एक ही डैशबोर्ड के अंतर्गत संरेखित करता है। यह दर्शाता है कि शाह के लिए सुरक्षा और विकास परस्पर-विरोधी नहीं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

"समाधान" का विस्तृत अर्थ

शाह के नक्सल-विरोधी सिद्धांत "समाधान" (SAMADHAN) का हर अक्षर एक रणनीतिक सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करता है — स्मार्ट नेतृत्व, आक्रामक रणनीति, प्रेरणा और प्रशिक्षण, कार्रवाई-योग्य गुप्तचर सूचना, डैशबोर्ड-आधारित निगरानी, प्रौद्योगिकी का उपयोग, हर क्षेत्र के लिए कार्य-योजना, और वित्तपोषण तक पहुँच को अवरुद्ध करना।

यह ढाँचा शाह की उसी डेटा-संचालित, व्यवस्थित कार्यशैली का प्रतिबिंब है जो हमने उनके चुनावी प्रबंधन में देखी। जैसे उन्होंने चुनाव को बूथ-स्तर के गणित में तोड़ा, वैसे ही उन्होंने नक्सलवाद के विरुद्ध संघर्ष को मापनीय, निगरानी-योग्य घटकों में तोड़ा। डैशबोर्ड-आधारित निगरानी का विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है — यह एक आधुनिक प्रबंधन-उपकरण को आंतरिक-सुरक्षा के क्षेत्र में लाने का उदाहरण है।

वित्तपोषण की धमनियों को काटना

“समाधान” के अंतिम तत्व — वित्तपोषण तक पहुँच को अवरुद्ध करना — पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि यह एक ऐसी रणनीतिक अंतर्दृष्टि को दर्शाता है जो प्रायः अनदेखी रह जाती है। कोई भी सशस्त्र आंदोलन धन के बिना जीवित नहीं रह सकता — हथियार, गोला-बारूद, संचार, और संगठन के संचालन के लिए निरंतर वित्त-प्रवाह आवश्यक होता है। उग्रवादी संगठन यह धन ज़बरन वसूली, अवैध खनन और तस्करी के माध्यम से जुटाते थे।

शाह की रणनीति ने इन वित्तीय धमनियों को व्यवस्थित रूप से काटने का कार्य किया। प्रवर्तन-एजेंसियों के समन्वय से उग्रवादियों के धन-स्रोतों को निशाना बनाया गया, उनके वित्तीय नेटवर्क को ध्वस्त किया गया। यह एक आधुनिक, बहु-आयामी सुरक्षा-दृष्टिकोण का प्रमाण है — यह समझ कि उग्रवाद को केवल जंगल में बंदूक से नहीं, बल्कि उसकी आर्थिक रीढ़ को तोड़कर भी पराजित किया जाता है। यह शाह की उस समग्र दृष्टि का अंग था जिसमें हर पहलू — सैन्य, आर्थिक, विकासात्मक, और मनोवैज्ञानिक — एक साथ साधा जाता है।

विकास का मानवीय चेहरा

नक्सल-विरोधी अभियान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका विकास-आयाम था। शाह ने बार-बार यह तर्क दिया कि नक्सलवाद मूलतः एक विकास-शून्यता का परिणाम है — जहाँ सड़कें नहीं पहुँचतीं, जहाँ स्कूल और अस्पताल नहीं हैं, जहाँ बैंक और रोज़गार के अवसर नहीं हैं, वहीं उग्रवाद की विचारधारा जड़ें जमाती है।

इसलिए सुरक्षा-अभियान के साथ-साथ एक विशाल विकास-कार्यक्रम चलाया गया। 14,618 किलोमीटर सड़कें केवल एक आँकड़ा नहीं हैं; वे उन गाँवों तक राज्य की पहुँच का प्रतीक हैं जो दशकों से अलग-थलग थे। 178 एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय उन जनजातीय बच्चों के लिए शिक्षा का द्वार हैं जिन्होंने पहली बार स्कूल देखा। यह विकास का मानवीय चेहरा है — एक ऐसा राष्ट्र-निर्माण जो बंदूक और सड़क, दोनों से होता है।

यहाँ शाह की राष्ट्र-निर्माण की समग्र दृष्टि स्पष्ट होती है: एकीकरण केवल भूगोल का नहीं, बल्कि अवसर का भी होना चाहिए। जो क्षेत्र दशकों से मुख्यधारा से कटे

रहे, उन्हें केवल सुरक्षा-बल से नहीं, बल्कि विकास और सम्मान से राष्ट्र में एकीकृत किया जाना चाहिए।

धरती आबा अभियान: जनजातीय गरिमा की पुनर्स्थापना

2 अक्टूबर 2024 को आरंभ हुआ "धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान" इस विकास-दृष्टि का प्रतीक-शिखर था। इसका नाम स्वयं ही गहरा अर्थ रखता है — "धरती आबा" अर्थात "धरती के पिता," जो प्रसिद्ध जनजातीय नायक बिरसा मुंडा की उपाधि थी। इस नामकरण के माध्यम से सरकार ने एक स्पष्ट संदेश दिया: जनजातीय समुदाय राष्ट्र-निर्माण के हाशिये पर नहीं, बल्कि उसके केंद्र में हैं, और उनकी गरिमा एवं विरासत राष्ट्र की विरासत का अभिन्न अंग है।

यह अभियान नक्सल-विरोधी रणनीति के उस गहनतम तर्क को व्यक्त करता है: वर्षों तक उग्रवाद ने जनजातीय असंतोष का दोहन किया था, उन्हें यह विश्वास दिलाकर कि राज्य उनका शत्रु है। धरती आबा अभियान जैसे कार्यक्रमों ने इस आख्यान को उलट दिया — यह दिखाकर कि राज्य जनजातीय कल्याण, शिक्षा, अवसंरचना और सम्मान के लिए प्रतिबद्ध है। जब विकास और गरिमा दोनों एक साथ पहुँचते हैं, तो उग्रवाद की वैचारिक भूमि स्वयं ही बंजर हो जाती है। यही "विकास और सुरक्षा" का सच्चा संगम था।

हैदराबाद की प्रतिध्वनि

नक्सलवाद के विरुद्ध शाह का यह अभियान पटेल के हैदराबाद-प्रसंग की एक आधुनिक प्रतिध्वनि है। जैसे पटेल ने आंतरिक अव्यवस्था की स्थिति को वार्ता के बजाय निर्णायक कार्रवाई और उसके पश्चात एकीकरण से सुलझाया, वैसे ही शाह ने वामपंथी उग्रवाद को सुरक्षा-बल और विकास के युग्मन से समाप्त करने का संकल्प लिया। दोनों के लिए, राष्ट्र की आंतरिक एकता और क़ानून का राज किसी भी अल्पकालिक समझौते से ऊपर था।

निर्णायकता की एक साझी विरासत

पटेल और शाह के बीच की यह समानता केवल सतही नहीं है; वह एक साझा राजनीतिक स्वभाव को प्रकट करती है। पटेल ने हैदराबाद के प्रश्न पर अंतहीन वार्ता और अनिर्णय के मार्ग को अस्वीकार किया था; उन्होंने समझा था कि कुछ आंतरिक चुनौतियाँ ऐसी होती हैं जिनके समक्ष दृढ़ता ही एकमात्र उत्तरदायी मार्ग है। उसी प्रकार, शाह ने नक्सलवाद के प्रति उस सहिष्णु-निष्क्रियता को अस्वीकार किया जो दशकों तक चली थी, और उसके स्थान पर एक निर्णायक, समयबद्ध रणनीति अपनाई।

परंतु दोनों के लिए, निर्णायकता का अर्थ केवल बल-प्रयोग नहीं था। पटेल ने हैदराबाद के एकीकरण के पश्चात उसे राष्ट्र की मुख्यधारा में समाविष्ट किया; शाह ने नक्सल-प्रभावित क्षेत्रों में विकास और गरिमा पहुँचाकर उन्हें राष्ट्र में पुनः एकीकृत किया। यही "नया लौह पुरुष" की पहचान का एक मूल तत्व है — दृढ़ता और एकीकरण का वही संयोग जिसने पटेल को "लौह पुरुष" बनाया था, अब एक आधुनिक आंतरिक-सुरक्षा चुनौती पर लागू।

नक्सलवाद के विरुद्ध यह अभियान शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का एक ठोस, मापनीय प्रमाण है। और इस दर्शन का एक सबसे भावनात्मक और सांस्कृतिक आयाम था — राम मंदिर का सदियों पुराना संकल्प, जिसकी कथा अगले अध्याय की है।

अध्याय 14

राम मंदिर: सदियों का संकल्प, धैर्य की विजय

अमित शाह का राम जन्मभूमि आंदोलन से संबंध उनकी राजनीतिक जीवनी का सबसे दीर्घकालिक धागा है — यह 1980 के दशक के आरंभ में अहमदाबाद के एक संघ-युवा संगठनकर्ता के रूप में आरंभ होता है, और 2024 में, उनके मंत्री-पद के दौरान, राम लला की प्राण-प्रतिष्ठा के साथ अपनी पूर्णता तक पहुँचता है। "लंबी पारी" के दर्शन को इससे बेहतर कोई उदाहरण नहीं दर्शाता।

1990 की एकता यात्रा

अपने ही विवरण के अनुसार, शाह ने 1977 में मनसा में जनसंघ की उम्मीदवार मणिबेन पटेल के लिए पोस्टर लगाने से अपनी राजनीतिक यात्रा आरंभ की। एक युवा संघ-कार्यकर्ता के रूप में, उनका पहला जन-लामबंदी कार्य था **1990 की एकता यात्रा** — लालकृष्ण आडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या तक की वह रथ-यात्रा जो राम जन्मभूमि आंदोलन की राष्ट्रीय रूप से गोलबंद करने वाली घटना बनी। शाह की आधिकारिक जीवनी उन्हें "अहमदाबाद शहर का प्रभारी" बताती है जिसने एकता यात्रा के समर्थन में "जनसमुद्र को लामबंद किया।"

यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है: शाह के लिए अयोध्या का प्रश्न कभी एक धार्मिक अमूर्तता नहीं था, बल्कि जन-लामबंदी की एक तार्किक चुनौती था — ठीक वही कौशल जिसे उन्होंने आगे चलकर 2014 के उत्तर प्रदेश में परिष्कृत किया।

1977 का बीज: एक पोस्टर-लगाने वाला किशोर

शाह की राम जन्मभूमि-यात्रा की जड़ें उस घटना में हैं जो स्वयं इस पुस्तक के केंद्रीय रूपक — "लंबी पारी" — का प्रतीक है। 1977 में, मात्र तेरह वर्ष की आयु में, मनसा में जनसंघ की उम्मीदवार मणिबेन पटेल के लिए पोस्टर लगाते हुए, एक किशोर अमित शाह को संघ के वरिष्ठ पर्यवेक्षकों ने पहचाना। यह संयोग मार्मिक है

— कि वह उम्मीदवार स्वयं सरदार वल्लभभाई पटेल की पुत्री थीं। इस प्रकार शाह की राजनीतिक यात्रा का आरंभ-बिंदु ही पटेल-परिवार से जुड़ा था, मानो विधि ने ही "नए लौह पुरुष" को "पुराने लौह पुरुष" की विरासत से बाँध दिया हो।

इस किशोर के पोस्टर-कार्य और 2024 की प्राण-प्रतिष्ठा के बीच लगभग सैंतालीस वर्ष का अंतराल है। यह अंतराल ही शाह के व्यक्तित्व की कुंजी है। जहाँ अधिकांश राजनेता तात्कालिक परिणामों की भाषा में सोचते हैं, वहीं शाह ने अपना समूचा राजनीतिक जीवन एक ऐसे संकल्प को समर्पित किया जिसकी पूर्णता में दशकों लगने वाले थे। पोस्टर लगाने वाला किशोर और राम ज्योति प्रज्वलित करने वाला गृह मंत्री — ये एक ही व्यक्ति के दो छोर हैं, जिन्हें एक अटूट धैर्य का सूत्र जोड़ता है।

एक बहु-पीढ़ीय संकल्प

1992 में बाबरी ढाँचे के विध्वंस के पश्चात, राम जन्मभूमि का प्रश्न स्वतंत्र भारत का सबसे दीर्घकालिक अनसुलझा संवैधानिक नाटक बन गया। दो दशकों तक यह भाजपा के घोषणापत्रों के पीछे जीवित रहा, फिर एक न्यायालयीन लड़ाई और एक विधायी प्रतिज्ञा के रूप में पुनः उभरा। शाह की भूमिका इस लंबे अंतराल में त्रि-आयामी थी — संगठनात्मक (इस मुद्दे को भाजपा के आख्यान में जीवित रखना), चुनावी, और संसदीय।

विरासत को जीवित रखने की कला

किसी आंदोलन को दशकों तक जीवित रखना — विशेषकर तब जब वह न्यायालय की लंबी प्रक्रिया में अटका हो — एक विरल संगठनात्मक कौशल की माँग करता है। ऐसे लंबे अंतरालों में जनता का ध्यान बिखर जाता है, ऊर्जा क्षीण हो जाती है, और मुद्दे विस्मृत हो जाते हैं। शाह की एक मूल भूमिका यही थी कि उन्होंने इस संकल्प को राजनीतिक स्मृति में जीवित रखा — न तो उसे आक्रामक रूप से भड़काकर, और न ही उसे ठंडा पड़ने देकर।

यह संतुलन एक परिपक्व संगठनकर्ता की पहचान है। एक मुद्दे को जीवित रखने का अर्थ है उसे एक स्थायी संस्थागत प्रतिबद्धता में बदलना — घोषणापत्रों में,

कार्यकर्ताओं की चेतना में, और दल की दीर्घकालिक रणनीति में। शाह ने राम जन्मभूमि के प्रश्न को इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित किया, इस विश्वास के साथ कि संवैधानिक प्रक्रिया अपने समय पर अपना मार्ग खोज लेगी। यह धैर्य — परिणाम की प्रतीक्षा में संकल्प को क्षीण न होने देना — शाह की समूची राजनीतिक शैली का सार है।

9 नवंबर 2019: सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

जब सर्वोच्च न्यायालय की संविधान-पीठ ने 9 नवंबर 2019 को सर्वसम्मति से विवादित स्थल पर राम मंदिर के पक्ष में निर्णय दिया, और एक मस्जिद के लिए वैकल्पिक पाँच एकड़ भूमि के आवंटन का आदेश दिया, तो शाह उन पहले भाजपा नेताओं में से थे जिन्होंने प्रतिक्रिया दी। उसी दिन उनका वक्तव्य था: "सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अपने आप में एक मील का पत्थर सिद्ध होगा।"

यह एक सुविचारित रूप से संयत पंक्ति थी — लगभग न्यायिक स्वर में — जो शाह की उस आदत को दर्शाती है कि वे संवैधानिक परिणामों के प्रति वही प्रक्रियात्मक श्रद्धा रखते हैं जो वे प्रशासनिक मामलों के प्रति रखते हैं।

संयम का राजनीतिक संदेश

उस सर्वसम्मत निर्णय के क्षण में शाह के संयम को कम करके नहीं आँका जाना चाहिए। यह एक ऐसा क्षण था जिसकी प्रतीक्षा उन्होंने और उनके राजनीतिक परिवार ने दशकों से की थी — एक ऐसा निर्णय जो किसी भी पक्ष के लिए विजयोल्लास का अवसर बन सकता था। ऐसे क्षणों में संयमित रहना, और निर्णय को "एक मील का पत्थर" जैसे शांत, संस्थागत शब्दों में स्वागत करना, अपने आप में एक राजनीतिक परिपक्वता का प्रदर्शन था।

यह संयम एक सुविचारित संदेश भी था। पाँच न्यायाधीशों की संविधान-पीठ का सर्वसम्मत निर्णय भारत की न्यायिक संस्थाओं की वैधता का प्रमाण था; उसका विजयोल्लासपूर्ण स्वागत उस वैधता को घटा सकता था और सामाजिक तनाव को बढ़ा सकता था। शाह ने इसके विपरीत एक ऐसा स्वर अपनाया जो निर्णय को राष्ट्र के संवैधानिक तंत्र की एक सहज परिणति के रूप में प्रस्तुत करता था, न कि किसी एक

पक्ष की राजनीतिक विजय के रूप में। यह संयम स्वयं उनकी संस्थागत-प्रक्रियाओं के प्रति श्रद्धा का प्रतीक था — एक ऐसी श्रद्धा जो उनके समूचे शासन-दर्शन को परिभाषित करती है।

22 जनवरी 2024: प्राण-प्रतिष्ठा

अयोध्या में मंदिर — श्री राम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट द्वारा निर्मित — 22 जनवरी 2024 को प्रतिष्ठित हुआ। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मंदिर के भीतर राम लला की प्राण-प्रतिष्ठा संपन्न की।

उस दिन शाह की उपस्थिति स्वयं उनकी प्रतीकात्मक संवेदनशीलता का एक अध्ययन है। वे अयोध्या की प्रतिष्ठा-समारोह में स्वयं उपस्थित नहीं हुए — वे दिल्ली में रहे। इसके बजाय, "प्रधानमंत्री मोदी के अनुरोध पर", उन्होंने समारोह के पश्चात अपने निवास पर राम ज्योति (दीप) प्रज्वलित की। यह आचरण शाह की पद्धति का विशिष्ट है: सार्वजनिक आयोजन मोदी का, संगठनात्मक संचालक की भूमिका शाह की, और व्यक्तिगत भक्ति श्रद्धामय किंतु अनाडंबरपूर्ण। यह वही व्यक्ति था जो उस आयोजन की अग्रिम-पंक्ति से बचना पसंद करता था जिसे खड़ा करने में उसने चार दशक लगाए थे।

बिड़ला मंदिर का दीप: एक प्रतीकात्मक चयन

उस दिन शाह के आचरण का एक और मार्मिक विवरण है। अयोध्या न जाकर, उन्होंने दिल्ली के बिड़ला मंदिर में जाकर दर्शन किए, और फिर अपने निवास पर राम ज्योति प्रज्वलित की। यह चयन अपने आप में एक प्रतीक था। जिस व्यक्ति ने इस संकल्प को साकार करने में जीवन के सैंतालीस वर्ष लगाए थे, वह उस ऐतिहासिक क्षण में देश की राजधानी में, एक सामान्य मंदिर में, एक सामान्य श्रद्धालु की भाँति उपस्थित था।

यह विनम्रता किसी राजनीतिक मजबूरी से नहीं, बल्कि एक सुविचारित चारित्रिक चुनाव से उपजी थी। शाह ने उस ऐतिहासिक क्षण के सार्वजनिक मंच को मोदी के लिए छोड़ दिया — वह क्षण जो किसी भी राजनेता के लिए आजीवन गौरव का स्रोत हो सकता था। इसके बजाय उन्होंने एक मौन, व्यक्तिगत भक्ति का मार्ग चुना। यह

आत्म-विलोपन — स्वयं को परिणाम के पीछे रखकर परिणाम को सर्वोपरि बनाना — संगठनकर्ता की सर्वोच्च परिपक्वता है। एक व्यक्ति जो श्रेय की लालसा नहीं रखता, वही दीर्घकालिक संकल्पों को पूर्णता तक ले जा सकता है, क्योंकि उसका ध्यान अपनी छवि पर नहीं, बल्कि लक्ष्य पर केंद्रित रहता है।

एक संगठनकर्ता की दृष्टि से अयोध्या

शाह के लिए राम जन्मभूमि आंदोलन का अर्थ एक संगठनकर्ता की दृष्टि से समझना महत्वपूर्ण है। जहाँ अनेक नेताओं के लिए यह एक भावनात्मक या धार्मिक मुद्दा था, वहीं शाह के लिए यह एक जन-लामबंदी की चुनौती भी थी — लाखों लोगों को एक उद्देश्य के इर्द-गिर्द संगठित करने की।

1990 की एकता यात्रा में, एक 25 वर्षीय अमित शाह ने अहमदाबाद में जनसमुद्र को लामबंद किया। यह वही कौशल था जिसे उन्होंने आगे चलकर 2014 के उत्तर प्रदेश में परिष्कृत किया — भीड़ को संगठित करना, उसे एक दिशा देना, और उस ऊर्जा को एक राजनीतिक परिणाम में बदलना। इस प्रकार अयोध्या का प्रश्न शाह की संगठन-यात्रा का एक आरंभिक और निर्णायक अध्याय था।

तीन दशकों की क़ानूनी यात्रा

1992 से 2019 तक, राम जन्मभूमि का प्रश्न भारत की सबसे लंबी क़ानूनी लड़ाइयों में से एक रहा। यह एक ऐसी यात्रा थी जिसमें धैर्य की असाधारण परीक्षा हुई — पीढ़ियाँ बदलीं, सरकारें आईं और गईं, परंतु यह प्रश्न अनसुलझा रहा।

9 नवंबर 2019 को सर्वोच्च न्यायालय की संविधान-पीठ का सर्वसम्मत निर्णय इस तीन-दशकीय यात्रा की परिणति था। यह उल्लेखनीय है कि शाह ने इस निर्णय का स्वागत एक संयत, लगभग न्यायिक स्वर में किया — “एक मील का पत्थर” — न कि किसी विजयोल्लास के साथ। यह संयम स्वयं उनकी परिपक्वता और संस्थागत प्रक्रियाओं के प्रति सम्मान का प्रतीक था।

धैर्य का एक अनूठा पाठ

राम जन्मभूमि की समूची यात्रा शाह के राजनीतिक दर्शन का एक अनूठा पाठ प्रस्तुत करती है — कि कुछ लक्ष्य ऐसे होते हैं जो केवल धैर्य से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, बल या जल्दबाज़ी से नहीं। 1992 के विध्वंस के पश्चात, यह सरल होता कि इस प्रश्न को सड़क के आंदोलन या तीव्र राजनीतिक दबाव से सुलझाने का प्रयास किया जाता। परंतु शाह और भाजपा ने एक भिन्न मार्ग चुना — संवैधानिक और न्यायिक प्रक्रिया की प्रतीक्षा करने का मार्ग।

यह चयन अपने आप में एक राजनीतिक परिपक्वता का प्रमाण था। दशकों तक संकल्प को जीवित रखना, फिर भी न्यायालय की प्रक्रिया का सम्मान करना, और अंततः एक सर्वसम्मत न्यायिक निर्णय के माध्यम से लक्ष्य को प्राप्त करना — यह एक ऐसा मार्ग था जिसने मंदिर को संवैधानिक वैधता का आधार दिया, न कि केवल राजनीतिक विजय का। शाह के लिए, यह प्रतीक्षा कोई दुर्बलता नहीं थी; वह एक रणनीतिक धैर्य था जिसने अंततः एक अधिक स्थायी और वैध परिणाम सुनिश्चित किया।

प्रतीकात्मक विनम्रता का दर्शन

22 जनवरी 2024 को प्राण-प्रतिष्ठा के दिन शाह का आचरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे अयोध्या नहीं गए; उन्होंने मोदी को वह ऐतिहासिक क्षण दिया। इसके बजाय, उन्होंने अपने निवास पर राम ज्योति प्रज्वलित की।

यह आचरण शाह के समूचे व्यक्तित्व का प्रतीक है — वह व्यक्ति जो परदे के पीछे रहकर काम करता है, जो सार्वजनिक श्रेय की लालसा नहीं रखता, और जो किसी आयोजन की अग्रिम-पंक्ति से बचना पसंद करता है जिसे खड़ा करने में उसने दशकों लगाए। यह वही “राम और लक्ष्मण” की पूरकता थी — मोदी सार्वजनिक चेहरा, शाह संगठनात्मक संचालक। यह विनम्रता कोई दुर्बलता नहीं, बल्कि एक सुविचारित रणनीतिक और चारित्रिक चुनाव था।

धैर्य की विजय

राम मंदिर की यह यात्रा शाह के समूचे राजनीतिक दर्शन का सार-संक्षेप है। इसमें हर शाह-तकनीक अपने आसुत रूप में दिखाई देती है — धैर्य, वरिष्ठ नेताओं से सौंपी गई ज़िम्मेदारी, बूथ-स्तरीय तंत्र के माध्यम से जन-लामबंदी, संसदीय कौशल, और अनाडंबर व्यक्तिगत भक्ति — सब एक बहु-पीढ़ीय संकल्प पर लागू।

यही, अंततः, "चाणक्य" शब्द का वास्तविक अर्थ है जो भारतीय राजनीतिक शब्दावली में शाह के लिए प्रयुक्त होता है — एक ऐसा धैर्य जो दशकों तक प्रतीक्षा कर सकता है, और फिर निर्णायक क्षण में अपने संकल्प को पूर्णता तक ले जा सकता है।

पटेल का सोमनाथ, शाह की अयोध्या

यहाँ पटेल और शाह के बीच एक गहरी सांस्कृतिक समानता उभरती है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। सरदार पटेल ने स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण का संकल्प लिया था — एक ऐसा क़दम जो भारत की सभ्यतागत आत्म-छवि की पुनर्स्थापना का प्रतीक बना। पटेल के लिए सोमनाथ केवल एक मंदिर नहीं था; वह सदियों के आघातों के पश्चात राष्ट्र के आत्म-सम्मान की पुनः-प्राप्ति का प्रतीक था।

राम मंदिर शाह की पीढ़ी के लिए वही प्रतीकात्मक महत्व रखता है जो सोमनाथ पटेल की पीढ़ी के लिए रखता था। और यह संयोग और भी मार्मिक हो जाता है जब हम स्मरण करते हैं कि 1990 की जिस एकता यात्रा में युवा शाह ने भाग लिया था, वह सोमनाथ से ही आरंभ हुई थी और अयोध्या की ओर बढ़ी थी — मानो पटेल के सोमनाथ-संकल्प और शाह की अयोध्या-यात्रा के बीच एक प्रतीकात्मक सेतु हो। दोनों के लिए, इन सांस्कृतिक प्रतीकों की पुनर्स्थापना राष्ट्र-निर्माण के व्यापक कार्य का अभिन्न अंग थी — एक ऐसा कार्य जो भौतिक एकीकरण से आगे बढ़कर राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा की पुनर्स्थापना तक जाता है।

राम मंदिर शाह की दीर्घकालिक दृष्टि और धैर्य की विजय था। परंतु इस समूची यात्रा में एक और गुण था जो बार-बार प्रकट हुआ — संसद में, आलोचना के सामने, अडिगता। उस अडिगता की कथा अगले अध्याय की है।

अध्याय 15

सहकारिता गणराज्य: एक मौन क्रांति

राष्ट्र-निर्माण के नाटकीय अध्यायों — अनुच्छेद 370, सीएए, समान नागरिक संहिता — के बीच, अमित शाह के योगदान का एक कम चर्चित किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है: सहकारिता क्षेत्र का पुनर्गठन। यह एक मौन क्रांति है, जो भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ को नए सिरे से गढ़ रही है।

एक नए मंत्रालय का जन्म

7 जुलाई 2021 को, मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल के एक अप्रत्याशित पुनर्गठन में, अमित शाह को भारत के **प्रथम केंद्रीय सहकारिता मंत्री** के रूप में नियुक्त किया गया। इस निर्णय ने एक समर्पित सहकारिता मंत्रालय का सृजन किया, जिसे कृषि सहित अनेक पुराने मंत्रालयों के अधिकार-क्षेत्र से अलग कर बनाया गया।

यह नियुक्ति स्वयं में पटेल-परंपरा की एक प्रतिध्वनि थी। जैसे पटेल ने "लीवर को एकत्र" किया था — एक साथ उप प्रधानमंत्री, गृह और रियासत मंत्रालय सँभालकर — वैसे ही शाह ने गृह और सहकारिता, दोनों मंत्रालयों को एक साथ सँभालकर अधिकार के अनेक लीवरों को एकत्र किया। और जैसे पटेल ने एक नई संस्था (अखिल भारतीय सेवाएँ) के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण किया, वैसे ही शाह ने एक नए मंत्रालय के माध्यम से।

एक उपेक्षित क्षेत्र की राष्ट्रीय प्राथमिकता

7 जुलाई 2021 का यह निर्णय अपने समय में अनेक प्रेक्षकों के लिए अप्रत्याशित था। एक ऐसे क्षण में, जब राष्ट्रीय विमर्श अनुच्छेद 370, सीएए और अन्य नाटकीय निर्णयों के इर्द-गिर्द केंद्रित था, गृह मंत्री द्वारा एक नए, अपेक्षाकृत कम-चमकीले मंत्रालय का अतिरिक्त भार ग्रहण करना एक असामान्य विकल्प प्रतीत हुआ। परंतु यही विकल्प शाह की दृष्टि की गहराई को प्रकट करता है।

सहकारिता क्षेत्र दशकों से एक संस्थागत उपेक्षा का शिकार रहा था — न तो यह किसी एकल मंत्रालय की प्राथमिकता था, न ही इसके पास कोई समर्पित राष्ट्रीय रणनीति। यह कृषि, वित्त और अन्य मंत्रालयों के अधिकार-क्षेत्रों के बीच बँटा हुआ था, और राज्य-स्तरीय सहकारी रजिस्ट्रारों के अधीन एक खंडित अस्तित्व जीता था। शाह ने इस "स्थिर संस्थागत स्थान" को पहचाना — ठीक वही पद्धति जो उनके समूचे जीवन का सूत्र रही है — और इसे एक राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में पुनर्परिभाषित किया। एक उपेक्षित क्षेत्र को राष्ट्रीय एजेंडे के केंद्र में लाना स्वयं में एक प्रकार का राष्ट्र-निर्माण है, भले ही यह नाटकीय सुर्ख़ियों से दूर हो।

सहकारिता का विशाल पैमाना

सहकारिता क्षेत्र का महत्व इसके पैमाने से समझा जा सकता है। यह क्षेत्र लगभग 13 करोड़ उत्पादकों को समेटता है और 30 लाख करोड़ रुपये से अधिक की जमा-राशि रखता है — एक ऐसा आकार जो अनेक देशों की जीडीपी से बड़ा है। परंतु 2021 तक यह क्षेत्र अनेक केंद्रीय मंत्रालयों के अतिव्यापी अधिकार-क्षेत्रों, अनेक राज्य-स्तरीय सहकारी रजिस्ट्रारों, और किसी एकल रणनीतिक समन्वय के अभाव में बिखरा हुआ था।

शाह का कार्य इस बिखरे हुए विशाल क्षेत्र को एक सुसंगठित, आँकड़ा-संचालित तंत्र में बदलना था — ठीक वही पद्धति जो उन्होंने भाजपा के संगठन और पुलिस-तंत्र के साथ अपनाई थी।

"सहकारिता आंदोलन के पितामह"

शाह का सहकारिता से संबंध नया नहीं था। 2001 में, भाजपा के सहकारी प्रकोष्ठ के राष्ट्रीय समन्वयक के रूप में, उन्होंने इस क्षेत्र को राजनीतिक रूप से संगठित किया था। उनकी आधिकारिक जीवनी उन्हें "सहकारिता आंदोलन के पितामह" कहती है। और उनकी सहकारी-बैंकिंग की जड़ें तो और भी गहरी थीं — अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक का वह सबसे युवा अध्यक्ष, जिसके नाम से गाँव वाले बैंक को पुकारते थे।

इस प्रकार सहकारिता मंत्रालय शाह के लिए कोई अपरिचित क्षेत्र नहीं था; यह उनके आरंभिक जीवन की उस प्रयोगशाला की राष्ट्रीय परिणति थी जहाँ उन्होंने पहली बार जन-स्तरीय वित्तीय संगठन सीखा था।

सुधारों का लेखा-जोखा

सहकारिता मंत्रालय ने ठोस सुधार ज़मीन पर उतारे:

- **63,000 प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (PACS) का कंप्यूटरीकरण** — 2,516 करोड़ रुपये की लागत से, ताकि हर गाँव-स्तरीय ऋण समिति को एक एकल डिजिटल मंच पर लाया जा सके।
- **त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय** — अमूल के संस्थापक त्रिभुवनदास पटेल के नाम पर, भारत का प्रथम राष्ट्रीय सहकारी विश्वविद्यालय, जिसकी नींव 8 जुलाई 2025 को आनंद, गुजरात में रखी गई।
- **भारत टैक्सी** — एक चालक-स्वामित्व वाला सहकारी टैक्सी मंच, जिसे शाह ने 5 फरवरी 2026 को लॉन्च किया।
- एक पूर्णतः सहकारी-स्वामित्व वाली बीमा कंपनी की घोषणा, और सहकारी बैंकों के लिए आवास-ऋण की सीमा का दोगुना किया जाना।

एक परिचित पद्धति

इन सुधारों में शाह की वही मूल पद्धति दिखाई देती है जो उनके समूचे जीवन का सूत्र रही है — एक स्थायी संस्था का निर्माण (त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय), एक एकीकृत डेटा-मंच (63,000 PACS का कंप्यूटरीकरण), और नए आर्थिक वाहन (भारत टैक्सी, सहकारी बीमा)। जैसे गुजरात में फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय, और पुलिस में सीसीटीएनएस, वैसे ही सहकारिता में यह डिजिटल और संस्थागत ढाँचा।

63,000 PACS का कंप्यूटरीकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है — यह 63,000 अपारदर्शी गाँव-स्तरीय इकाइयों को खोज-योग्य, पारदर्शी नोड्स में

बदलने का प्रयास है। यह आधुनिक राष्ट्र-निर्माण का वही मौन, अवसंरचनात्मक रूप है जो दिखाई नहीं देता, परंतु जिस पर ग्रामीण भारत की आर्थिक क्षमता टिकी है।

सहकारी बैंकिंग की जड़ें: एक आरंभिक प्रयोगशाला

शाह की सहकारिता-दृष्टि को समझने के लिए हमें उनके आरंभिक जीवन की ओर लौटना होगा। 2000 से 2002 के बीच, अमित शाह अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक के सबसे युवा अध्यक्ष रहे — एक ऐसी संस्था जो उस समय गहरे आर्थिक संकट में थी। यहीं, गाँव-स्तरीय वित्तीय संगठन की उस प्रयोगशाला में, उन्होंने वह पाठ सीखा जो आगे चलकर एक राष्ट्रीय मंत्रालय का दर्शन बना — कि सहकारिता केवल एक कल्याणकारी विचार नहीं, बल्कि करोड़ों छोटे उत्पादकों की सामूहिक आर्थिक शक्ति को संगठित करने का एक व्यावहारिक यंत्र है।

यह उल्लेखनीय है कि शाह का यह आरंभिक अनुभव उसी प्रकार की "स्थानांतरित अनुशासन" का उदाहरण है जो उनके समूचे जीवन का सूत्र रही है। जैसे उन्होंने बूथ-स्तरीय संगठन का पाठ भाजपा-अध्यक्षता में, और राज्य-स्तरीय गृह-प्रशासन का पाठ केंद्रीय गृह मंत्रालय में लागू किया, वैसे ही उन्होंने ज़िला सहकारी बैंक का पाठ राष्ट्रीय सहकारिता मंत्रालय में लागू किया। यही कारण है कि उनकी आधिकारिक जीवनी उन्हें "सहकारिता आंदोलन के पितामह" कहती है — यह उपाधि किसी अचानक नियुक्ति की नहीं, बल्कि दो दशकों के निरंतर जुड़ाव की स्वीकृति है।

"लीवरों का एकत्रीकरण": पटेल-पद्धति की प्रतिध्वनि

सहकारिता मंत्रालय का सृजन एक गहरी पटेल-प्रतिध्वनि रखता है, जिसे और स्पष्ट करना आवश्यक है। सरदार पटेल ने स्वतंत्रता के तत्काल बाद उप प्रधानमंत्री, गृह मंत्रालय और रियासत मंत्रालय — तीनों को एक साथ सँभालकर अधिकार के अनेक लीवरों को एक हाथ में एकत्र किया था। यह कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं, बल्कि एक रणनीतिक आवश्यकता थी: राष्ट्र-निर्माण के तात्कालिक कार्य के लिए समन्वित, केंद्रित अधिकार की आवश्यकता थी।

शाह की 2021 की व्यवस्था इसी प्रतिमान की पुनर्रचना है। गृह और सहकारिता — दोनों मंत्रालयों को एक साथ सँभालकर उन्होंने आंतरिक सुरक्षा के लीवर के साथ-साथ ग्रामीण आर्थिक संगठन के लीवर को भी एकत्र किया। और जैसे पटेल का रियासत मंत्रालय कृषि या किसी पुराने विभाग का उपांग नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र, समर्पित संस्था थी, वैसे ही सहकारिता मंत्रालय को कृषि मंत्रालय के अधिकार-क्षेत्र से अलग कर एक स्वतंत्र अस्तित्व दिया गया। यह स्वयं में एक संस्थागत वक्तव्य था — कि सहकारिता अब किसी बड़े मंत्रालय की छाया में नहीं, बल्कि अपने अधिकार में राष्ट्रीय प्राथमिकता है।

विधिक और संरचनात्मक नवाचार

सहकारिता मंत्रालय का कार्य केवल योजनाओं की घोषणा तक सीमित नहीं रहा; इसने सहकारी क्षेत्र के विधिक और संरचनात्मक ढाँचे को भी आधुनिक बनाने का प्रयास किया। सहकारी बैंकों के लिए आवास-ऋण की सीमा को दोगुना किया जाना इसका एक ठोस उदाहरण है — एक ऐसा सुधार जो प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण और अर्ध-शहरी परिवारों की क्रय-शक्ति को बढ़ाता है। इसी प्रकार, एक पूर्णतः सहकारी-स्वामित्व वाली बीमा कंपनी की घोषणा एक मौलिक दृष्टि की अभिव्यक्ति थी — कि करोड़ों छोटे उत्पादकों को न केवल ऋण और बाज़ार, बल्कि जोखिम-संरक्षण भी सहकारी ढाँचे के भीतर ही उपलब्ध हो।

ये नवाचार दर्शाते हैं कि शाह की सहकारिता-दृष्टि केवल वर्तमान संस्थाओं को सुधारने तक सीमित नहीं, बल्कि नए आर्थिक वाहनों के सृजन तक विस्तृत है। भारत टैक्सी — एक चालक-स्वामित्व वाला सहकारी टैक्सी मंच, जिसे शाह ने 5 फरवरी 2026 को लॉन्च किया — इसका सबसे नवीन उदाहरण है। यह एक ऐसे युग में, जहाँ डिजिटल मंच प्रायः कुछ निगमों के हाथों में केंद्रित हैं, सहकारिता के सिद्धांत को आधुनिक "गिग अर्थव्यवस्था" में ले जाने का साहसिक प्रयास है — जहाँ मंच का स्वामित्व उन्हीं चालकों के हाथों में हो जो उस पर श्रम करते हैं।

त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय: ज्ञान का संस्थानीकरण

संस्था-निर्माण की शाह की पद्धति का सबसे स्थायी उदाहरण है त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय। 8 जुलाई 2025 को आनंद, गुजरात में इसकी नींव रखी गई — और यह स्थान-चयन स्वयं में प्रतीकात्मक है। आनंद वही भूमि है जहाँ अमूल और श्वेत क्रांति का जन्म हुआ। और विश्वविद्यालय का नामकरण त्रिभुवनदास पटेल के नाम पर हुआ — वही त्रिभुवनदास, जिन्होंने अमूल की सहकारी डेयरी का आरंभ किया था।

इस विश्वविद्यालय का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सहकारिता के ज्ञान, प्रबंधन और प्रशिक्षण को एक स्थायी शैक्षणिक संस्था में संस्थानीकृत करता है। जैसे पटेल ने अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से प्रशासनिक ज्ञान का "इस्पात का ढाँचा" खड़ा किया, और जैसे शाह ने गुजरात में फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय के माध्यम से न्याय-विज्ञान का संस्थानीकरण किया, वैसे ही त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय सहकारी प्रबंधन का संस्थानीकरण करता है। यह एक ऐसी संस्था है जो आगामी दशकों तक सहकारी क्षेत्र के लिए प्रशिक्षित मानव-संसाधन तैयार करेगी — एक दीर्घकालिक निवेश जिसका लाभ पीढ़ियों तक मिलेगा।

अमूल का प्रतिमान

शाह ने सार्वजनिक रूप से अमूल (जीसीएमएमएफ) और इफको को विश्व के शीर्ष-दस सहकारी संगठनों में प्रथम दो स्थानों पर होने के लिए बधाई दी है। यह एक ऐसी दृष्टि का प्रतीक है जिसमें भारतीय सहकारी संगठन गांधीवादी अतीत के अवशेष नहीं, बल्कि विश्व-स्तर पर प्रतिस्पर्धी उद्यम हैं।

अमूल का उदाहरण शाह की सहकारिता-दृष्टि का प्रतिमान है: कि सहकारी संस्थाएँ केवल कल्याण के साधन नहीं, बल्कि करोड़ों छोटे उत्पादकों — किसानों, पशुपालकों, मछुआरों, और महिला स्वयं-सहायता समूहों — को सशक्त बनाने वाले व्यावसायिक उद्यम हैं। यह "सहकार से समृद्धि" का दर्शन है — सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण समृद्धि।

63,000 समितियों का डिजिटल रूपांतरण

सहकारिता मंत्रालय के सुधारों में सबसे महत्वाकांक्षी और सबसे दूरगामी कदम है प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (पैक्स) का कंप्यूटरीकरण। 2,516 करोड़ रुपये के परिव्यय से, 63,000 पैक्स को एक एकल डिजिटल मंच पर लाया जा रहा है। इस आँकड़े के पीछे की वास्तविकता को समझना आवश्यक है: पैक्स ग्रामीण ऋण-व्यवस्था की सबसे निचली, सबसे केशिका-स्तरीय इकाई है — वह स्थान जहाँ छोटा किसान बीज, खाद और अल्पकालिक ऋण के लिए जाता है।

दशकों तक ये 63,000 इकाइयाँ अपारदर्शी, अलग-थलग और मैनुअल बहीखातों पर निर्भर रहीं। इनमें से अनेक भ्रष्टाचार, कुप्रबंधन और धन के रिसाव की शिकार थीं। शाह की पद्धति इन्हें खोज-योग्य, पारदर्शी और परस्पर-जुड़े डिजिटल नोड्स में बदलने की है — ठीक उसी प्रकार जैसे उन्होंने गुजरात में 16,390 पुलिस थानों को सीसीटीएनएस (अपराध एवं अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क) पर लाया था। यह वही "आँकड़ों से जोड़ने" की पद्धति है जो शाह के समूचे सार्वजनिक जीवन का एक स्थायी हस्ताक्षर है। एक बार जब हर पैक्स एक डिजिटल मंच पर आ जाएगा, तो वह न केवल पारदर्शी होगा, बल्कि बैंकिंग, बीमा और सरकारी कल्याण-योजनाओं के लिए एक एकीकृत वितरण-केंद्र भी बन सकेगा।

"सहकार से समृद्धि": एक आर्थिक दर्शन

सहकारिता मंत्रालय का मूल मंत्र है — "सहकार से समृद्धि", अर्थात् सहकारिता के माध्यम से समृद्धि। यह नारा एक गहरे आर्थिक दर्शन को व्यक्त करता है। भारत की अर्थव्यवस्था में दो प्रमुख ध्रुव प्रायः चर्चा में रहते हैं — एक ओर बड़े निगम और निजी पूँजी, और दूसरी ओर राज्य-संचालित कल्याण। सहकारिता एक तीसरा मार्ग प्रस्तुत करती है: सामूहिक स्वामित्व पर आधारित उद्यम, जहाँ लाभ बिचौलियों या बाहरी शेयरधारकों के पास नहीं, बल्कि उन्हीं उत्पादकों के पास जाता है जो उद्यम के सदस्य और स्वामी हैं।

यह दर्शन विशेष रूप से उन वर्गों के लिए सशक्तिकरण का यंत्र है जो व्यक्तिगत रूप से बाज़ार में दुर्बल हैं — छोटे किसान, पशुपालक, मछुआरे, और महिला स्वयं-सहायता समूह। अकेले, इनमें से प्रत्येक की बाज़ार में सौदेबाज़ी की शक्ति नगण्य है;

परंतु सहकारी संगठन के रूप में, ये करोड़ों की संख्या में संगठित होकर बाज़ार में एक निर्णायक शक्ति बन जाते हैं। यही "सहकार से समृद्धि" का मर्म है — संगठन के माध्यम से दुर्बल का सशक्तिकरण। और यह दर्शन शाह के व्यापक राजनीतिक-दर्शन से सुसंगत है: कि शक्ति संगठन से आती है, चाहे वह राजनीतिक संगठन हो या आर्थिक।

राष्ट्र-निर्माण का एक मौन आयाम

सहकारिता मंत्रालय शाह के राष्ट्र-निर्माण के दर्शन का सबसे आसुत प्रदर्शन है। यहाँ कोई नाटकीय संसदीय युद्ध नहीं, कोई विवादास्पद विधेयक नहीं — केवल धैर्यपूर्ण, व्यवस्थित संस्था-निर्माण। यह दर्शाता है कि शाह के लिए राष्ट्र-निर्माण केवल नाटकीय निर्णयों का नहीं, बल्कि उस मौन, अवसंरचनात्मक कार्य का भी नाम है जो ग्रामीण भारत के सबसे बड़े आर्थिक क्षेत्र को आधुनिक बनाता है।

यह वही धैर्य, वही दीर्घकालिक दृष्टि है जो पटेल के "इस्पात के ढाँचे" में दिखाई दी थी — एक ऐसा निर्माण जिसका लाभ पीढ़ियों तक मिलेगा।

खंड चार — अडिग दृष्टि

अध्याय 16
संसद में अडिग: आलोचना के सामने चट्टान

किसी राष्ट्र-निर्माता की सच्ची परीक्षा शांत जल में नहीं, बल्कि आँधी में होती है। और अमित शाह की वह परीक्षा बार-बार उसी मंच पर हुई जो लोकतंत्र का हृदय है — संसद। इस अध्याय में हम उन क्षणों को देखेंगे जब शाह पर सबसे तीखे प्रहार हुए, और जब उन्होंने चट्टान की तरह अडिग रहकर यह सिद्ध किया कि एक राष्ट्र-निर्माता आलोचना के सामने अपने दीर्घकालिक संकल्प से विचलित नहीं होता।

“चाहे जो हो जाए”: सबसे शुद्ध अडिगता

जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, 17 दिसंबर 2019 को, राष्ट्रव्यापी सीएए-विरोधी प्रदर्शनों के बीच, दिल्ली के द्वारका में शाह ने कहा: “चाहे जो हो जाए, मोदी सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि इन शरणार्थियों को भारतीय नागरिकता मिले।” यह वाक्य शाह की अडिगता का सबसे शुद्ध और सबसे सत्यापन-योग्य उदाहरण है। एक आवेशित राष्ट्रव्यापी संदर्भ में, उन्होंने पीछे हटने से इनकार कर दिया।

संसद: राष्ट्र-निर्माता की असली परीक्षा-भूमि

लोकतंत्र में, संसद वह क्रूसिबल है जहाँ नीतियाँ केवल पारित नहीं होतीं, बल्कि सार्वजनिक विवेक के सामने उनकी अग्नि-परीक्षा होती है। एक तानाशाह आदेश द्वारा शासन कर सकता है; परंतु एक लोकतांत्रिक राष्ट्र-निर्माता को अपने हर निर्णय को बहस के मंच पर सिद्ध करना होता है, विरोध को सहना होता है, और फिर भी अडिग रहना होता है। यही कारण है कि शाह की राष्ट्र-निर्माता के रूप में सच्ची परीक्षा संसद में हुई — न कि किसी एकांत कार्यालय में।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शाह अपने सबसे विवादास्पद निर्णयों को भी संसदीय प्रक्रिया के माध्यम से ही आगे बढ़ाते हैं — मत-विभाजन का सामना करते

हैं, विपक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते हैं, और बहुमत अर्जित करते हैं। यह स्वयं एक लोकतांत्रिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। आलोचना से बचकर, अध्यादेशों या प्रशासनिक आदेशों के पीछे छिपकर शासन करना सरल होता; परंतु शाह बार-बार संसद के सबसे खुले, सबसे प्रतिकूल मंच पर खड़े होने का विकल्प चुनते हैं। यही चयन — खुले द्वंद्व का चयन — उनकी अडिगता को एक विशेष नैतिक भार देता है।

अनुच्छेद 370 की बहस: विपक्ष के शोर के बीच स्थिर स्वर

5 अगस्त 2019 को जब शाह ने अनुच्छेद 370 के निरसन का संकल्प प्रस्तुत किया, तो राज्यसभा में विपक्ष का शोर चरम पर था। परंतु शाह की आवाज़ स्थिर रही। उन्होंने एक-एक करके आपत्तियों का उत्तर दिया, तथ्यों और तिथियों के साथ अपना तर्क खड़ा किया, और अंततः उस संकल्प को पारित कराया जिसे सात दशकों से "असंभव" माना जाता था। यह वही "डिटेल्स मैन" था जो विवरणों के साथ तैयार आता है और हर युद्ध को जीतने के संकल्प के साथ खड़ा होता है।

तुष्टिकरण बनाम राष्ट्रहित: संसद में बार-बार दोहराया गया संदेश

शाह ने अपनी संसदीय भूमिका का उपयोग एक सुसंगत संदेश को बार-बार दोहराने के लिए किया — कि भारतीय राजनीति का मूल विभाजन राष्ट्रहित बनाम तुष्टिकरण का है।

- **17 दिसंबर 2024, राज्यसभा** (संविधान की 75वीं वर्षगाँठ पर बहस): उन्होंने घोषणा की कि भाजपा अपने शासन वाले हर राज्य में समान नागरिक संहिता लाएगी, और कांग्रेस पर "तुष्टिकरण की राजनीति" का आरोप लगाया।
- **9 दिसंबर 2025, वंदे मातरम् बहस**: उन्होंने तर्क दिया कि वंदे मातरम् का "विभाजन" तुष्टिकरण की राजनीति के लिए किया गया, जिसने अंततः भारत के विभाजन की पृष्ठभूमि रची। कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे ने तीखा प्रत्युत्तर दिया, और यह आदान-प्रदान संसदीय इतिहास में दर्ज हुआ।

यह उल्लेखनीय है कि शाह इन बहसों में आलोचना से बचते नहीं — वे आते हैं, प्रतिप्रहार करते हैं, और अपने तर्क पर डटे रहते हैं। यह आदान-प्रदान, जिसमें विपक्ष भी पूरी शक्ति से प्रतिप्रहार करता है, स्वयं लोकतंत्र की जीवंतता का प्रमाण है — और साथ ही शाह की उस अडिगता का भी जो किसी भी प्रहार के सामने झुकती नहीं।

विपक्ष के नेताओं को सीधी चुनौती

शाह की संसदीय शैली का एक उल्लेखनीय पहलू है — विपक्ष के नेताओं को सीधी, तथ्य-आधारित चुनौती। एक अवसर पर, जब विपक्ष ने एक अविश्वास-प्रस्ताव के माध्यम से सरकार को घेरने का प्रयास किया, तो शाह ने आँकड़ों और तथ्यों के साथ प्रत्युत्तर दिया और अपने सारवान दावे पर डटे रहे; प्रस्ताव अंततः विफल रहा।

वंदे मातरम् बहस: इतिहास का प्रश्न

9 दिसंबर 2025 की वंदे मातरम् बहस शाह की संसदीय शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। शाह ने तर्क दिया कि वंदे मातरम् गीत का "विभाजन" — अर्थात् 1937 में इसके केवल दो छंदों को अपनाने का निर्णय — तुष्टिकरण की राजनीति का परिणाम था, जिसने अंततः भारत के विभाजन की पृष्ठभूमि रची। उन्होंने कहा: "यह तुष्टिकरण की राजनीति की शुरुआत थी, और इसने अंततः भारत के विभाजन को जन्म दिया।"

यह एक तीखा ऐतिहासिक दावा था, और कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे ने इसका उतना ही तीखा प्रत्युत्तर दिया। उन्होंने शाह पर इतिहास को राजनीतिक लाभ के लिए तोड़ने-मरोड़ने का आरोप लगाया, और कहा कि वंदे मातरम् के केवल दो छंदों को अपनाने का निर्णय एक सामूहिक कांग्रेस कार्यसमिति का निर्णय था, जिसमें गांधी, सुभाष चंद्र बोस, मदन मोहन मालवीय और जे. बी. कृपलानी शामिल थे।

यह आदान-प्रदान — जिसमें दोनों पक्ष पूरी शक्ति से अपने-अपने तर्क रखते हैं — स्वयं भारतीय लोकतंत्र की जीवंतता का प्रमाण है। और शाह की भूमिका इसमें उल्लेखनीय है: वे आलोचना से बचते नहीं, बल्कि एक स्पष्ट ऐतिहासिक आख्यान प्रस्तुत करते हैं और उस पर डटे रहते हैं, चाहे प्रत्युत्तर कितना भी तीखा क्यों न हो।

अविश्वास-प्रस्ताव: तथ्यों का प्रहार

शाह की संसदीय शैली का एक और उदाहरण तब प्रकट हुआ जब विपक्ष ने एक अविश्वास-प्रस्ताव के माध्यम से सरकार को घेरने का प्रयास किया। शाह ने आँकड़ों और तथ्यों के साथ प्रत्युत्तर दिया — विपक्ष के नेताओं की संसदीय उपस्थिति के आँकड़े प्रस्तुत किए, उनके विदेशी भाषणों का उल्लेख किया, और अपने सारवान दावे पर डटे रहे। प्रस्ताव अंततः विफल रहा।

यह शाह की उस तैयारी और तथ्य-आधारित दृढ़ता का प्रमाण है जो "डिटेल्स मैन" की पहचान है। वे संसद में भावनात्मक आवेश से नहीं, बल्कि तथ्यों और आँकड़ों के शस्त्रागार से लड़ते हैं — ठीक उसी प्रकार जैसे वे चुनाव बूथ-स्तर के गणित से लड़ते हैं।

अपमान के सामने आत्म-सम्मान

शाह की अडिगता का एक सूक्ष्म पहलू यह है कि वे अपमान या उकसावे के सामने अपना आत्म-सम्मान और संयम बनाए रखते हैं। संसद के तीखे आदान-प्रदानों में, जहाँ प्रायः व्यक्तिगत आक्षेप होते हैं, शाह अपने सारवान तर्क पर केंद्रित रहते हैं। यह आत्म-संयम स्वयं एक प्रकार की शक्ति है — एक ऐसी शक्ति जो शोर से नहीं, बल्कि स्थिरता से आती है।

अविश्वास-प्रस्ताव का दृश्य: तथ्यों का शस्त्रागार

11 मार्च 2026 का दृश्य शाह की संसदीय अडिगता का एक विशेष रूप से उल्लेखनीय उदाहरण है। जब विपक्ष ने लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला के विरुद्ध एक अविश्वास-प्रस्ताव के माध्यम से सरकार पर दबाव बनाने का प्रयास किया, तो शाह ने भावनात्मक प्रत्याक्रमण के बजाय आँकड़ों का शस्त्रागार खोल दिया। उन्होंने राहुल गांधी की लोकसभा-उपस्थिति के आँकड़े उद्धृत किए — विभिन्न कार्यकालों में 43 प्रतिशत, 52 प्रतिशत और 51 प्रतिशत — और विपक्ष के नेताओं के विदेशी भाषणों का उल्लेख किया। प्रस्ताव अंततः ध्वनि-मत से पराजित हुआ।

यह दृश्य शाह की संसदीय शैली के मर्म को उजागर करता है। जहाँ अनेक नेता संसदीय युद्ध को वाक्चातुर्य या आवेश का खेल बना देते हैं, वहाँ शाह इसे तैयारी और तथ्य का खेल बनाते हैं। उनका हर प्रत्युत्तर सत्यापन-योग्य संख्याओं पर टिका होता है — ठीक उसी प्रकार जैसे वे चुनावी रणनीति को पन्ना-प्रमुख के सूक्ष्म गणित पर टिकाते हैं। यह वही "डिटेल्स मैन" है जिसके लिए, उनके सहयोगी देवांग दानी के शब्दों में, "चाहे ग्राम पंचायत हो या संसद, कोई चुनाव छोटा नहीं — हर युद्ध जीतना ही है।"

अनुच्छेद 370 की बहस: पाँच स्तंभों का अडिग तर्क

5 अगस्त 2019 की राज्यसभा-बहस को थोड़ा और गहराई से देखना उचित है, क्योंकि यह शाह की अडिगता का सबसे ऐतिहासिक प्रदर्शन था। विपक्ष के शोर और बहिर्गमन की धमकियों के बीच, शाह ने अपना तर्क पाँच स्पष्ट स्तंभों पर खड़ा किया — राष्ट्रीय एकीकरण (श्यामा प्रसाद मुखर्जी और आंबेडकर की दृष्टि का आह्वान), मानवीय क़ीमत (उनके अनुसार, यदि यह व्यवस्था न होती तो 41,849 लोगों की जान न जाती), समानता (अनुच्छेद 370 की "महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी" प्रकृति), अस्थायित्व ("यह स्थायी नहीं है"), और विकास।

जो बात इस बहस को अडिगता का प्रतीक बनाती है, वह यह है कि शाह ने प्रत्येक आपत्ति का उत्तर शोर से नहीं, बल्कि संरचना से दिया। राज्यसभा ने प्रस्ताव को 125 के विरुद्ध 61 मतों से, और लोकसभा ने अगले दिन 370 के विरुद्ध 70 मतों से पारित किया। यह संख्या-बल स्वयं इस बात का प्रमाण था कि शाह की अडिगता केवल वक्तृत्व नहीं, बल्कि एक सुसंगठित संसदीय रणनीति थी।

सीएए की प्रस्तुति: विधेयक के पीछे की चट्टान

9 दिसंबर 2019 को जब शाह ने लोकसभा में नागरिकता संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, तो वातावरण विद्युत्-आवेशित था। विधेयक लोकसभा में 311 के विरुद्ध 80, और राज्यसभा में 125 के विरुद्ध 105 मतों से पारित हुआ। परंतु बहस के बाद जो आया, वह और भी कठिन परीक्षा थी — शाहीन बाग़ के प्रदर्शन, और फरवरी 2020 की दिल्ली-हिंसा।

इस समूचे आवेशित दौर में, शाह ने अपने सारवान दावे से एक इंच भी पीछे हटने से इनकार कर दिया। उन्होंने बार-बार दोहराया कि “किसी की भी भारतीय नागरिकता नहीं जाएगी” और कि यह क़ानून नागरिकता छीनने के लिए नहीं, बल्कि उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को नागरिकता देने के लिए है। 11 मार्च 2024 को सीएए के नियमों की अधिसूचना ने यह दिखाया कि यह अडिगता केवल बयानबाज़ी नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक संकल्प की निरंतरता थी — जो आरंभिक आँधी थमने के वर्षों बाद भी अपने मार्ग पर अटल रही।

एक “शांत, भयभीत-करने वाले रणनीतिकार” का चित्र

एक स्वतंत्र, विदेशी-विश्वसनीय स्रोत — बीबीसी की 3 मई 2024 की प्रोफ़ाइल — शाह की राजनीतिक उपस्थिति का वर्णन करती है। यह उन्हें विभिन्न रूप से “भारत के दूसरे सबसे शक्तिशाली व्यक्ति”, “मोदी की चुनावी मशीन के पीछे का मस्तिष्क”, और “डिटेल्स मैन जो काम पूरा करवाता है” के रूप में चित्रित करती है। यह वर्णन एक ऐसे व्यक्ति का है जिसकी राजनीतिक पूँजी भाषण-कला से नहीं, बल्कि संगठनात्मक दक्षता और अडिगता से बनी है।

तैयारी की संस्कृति: अडिगता का अदृश्य आधार

शाह की संसदीय अडिगता का एक अदृश्य किंतु आधारभूत स्रोत है — उनकी तैयारी की असाधारण संस्कृति। संसद में चट्टान की तरह खड़े रहना केवल चारित्रिक दृढ़ता का प्रश्न नहीं; यह उस गहन तैयारी का परिणाम है जो शाह हर बहस से पूर्व करते हैं। जब वे अनुच्छेद 370 की बहस में तिथियों, अनुच्छेदों और संवैधानिक आदेशों की एक शृंखला प्रस्तुत करते हैं, या जब वे अविश्वास-प्रस्ताव में विपक्ष के नेताओं की उपस्थिति के सटीक प्रतिशत उद्धृत करते हैं, तो यह आशु-वक्तृत्व नहीं, बल्कि सुनियोजित तैयारी है।

यह तैयारी ही उन्हें वह आत्मविश्वास देती है जो आलोचना के सामने डगमगाता नहीं। एक वक्ता जो तथ्यों के अपने आधार के प्रति अनिश्चित हो, वह शोर के सामने झुक जाता है; परंतु एक वक्ता जो जानता है कि उसका हर दावा एक सत्यापन-योग्य तथ्य पर टिका है, वह आँधी में भी स्थिर रहता है। यही कारण है कि बीबीसी जैसे

स्वतंत्र स्रोत भी उन्हें "उत्कृष्ट संगठक और अभियान-रणनीतिकार" कहते हैं — उनकी राजनीतिक शक्ति का स्रोत भाषण-कला का आवेश नहीं, बल्कि तथ्य और संगठन का अनुशासन है।

विपक्ष का सम्मान, असहमति का साहस

शाह की संसदीय शैली का एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे विपक्ष की उपस्थिति को लोकतंत्र का अनिवार्य अंग मानते हुए, साथ ही उससे तीव्र असहमति का साहस भी रखते हैं। वंदे मातरम् बहस में खड़गे के साथ हुआ आदान-प्रदान इसका उत्कृष्ट उदाहरण है — दोनों पक्ष पूरी शक्ति से अपने-अपने ऐतिहासिक आख्यान प्रस्तुत करते हैं, और न कोई पीछे हटता है, न मंच छोड़ता है।

यह संतुलन — विपक्ष की वैधता को स्वीकार करना, परंतु अपने तर्क पर अडिग रहना — स्वयं एक परिपक्व लोकतांत्रिक नेतृत्व की पहचान है। शाह आलोचना से न तो आहत होते हैं, न प्रतिशोधी; वे उसे एक बौद्धिक द्वंद्व के रूप में लेते हैं और तथ्यों के धरातल पर उसका सामना करते हैं। यह वही पटेल-गुण है जो कलकत्ता के मैदान में दिखाई दिया था, जब पटेल ने असहमति के बावजूद संवैधानिक संरचना के प्रति सम्मान का आग्रह किया था। एक जीवंत विपक्ष के सामने, दशकों तक टिकने वाला राष्ट्र-निर्माण इसी संतुलन की माँग करता है।

अडिगता का दर्शन

संसद में शाह की यह अडिगता कोई हठ नहीं, बल्कि एक दर्शन है। यह उस विश्वास से उपजती है कि जो निर्णय राष्ट्र के दीर्घकालिक हित में हैं, वे आरंभ में चाहे जितने विवादास्पद हों, इतिहास उन्हें सही सिद्ध करेगा। जैसे पटेल हैदराबाद और जूनागढ़ के निर्णयों पर आलोचना के बावजूद अडिग रहे, वैसे ही शाह अनुच्छेद 370, सीएए और समान नागरिक संहिता पर अडिग रहे।

यही अडिगता इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस का हृदय है। परंतु इससे पहले कि हम इस थीसिस के सबसे व्यापक सूत्रीकरण तक पहुँचें, दो अध्याय आवश्यक हैं — एक उस "लौह पुरुष" की उपाधि के अर्थ पर, जो पटेल से शाह तक संचरित होती है; और दूसरा उस विशाल प्रतिमा पर जो इस संचरण का दृश्यमान प्रतीक बन गई है।

अध्याय 17
भारत का बिस्मार्क: लौह पुरुष की परंपरा

"लौह पुरुष" — यह उपाधि भारतीय राजनीतिक चेतना में एक विशेष स्थान रखती है। यह दृढ़ता, निर्णायकता और राष्ट्र के प्रति अविचल निष्ठा का प्रतीक है। सरदार पटेल इस उपाधि के मूल अधिकारी हैं। परंतु यह उपाधि एक परंपरा भी है — एक ऐसी परंपरा जो, इस पुस्तक के अनुसार, अमित शाह तक संचरित होती है। इस अध्याय में हम इस उपाधि के अर्थ, इसके ऐतिहासिक संदर्भ, और इसकी निरंतरता की पड़ताल करेंगे।

एक उपाधि का सांस्कृतिक भार

किसी राष्ट्र की राजनीतिक चेतना में कुछ उपाधियाँ सामान्य प्रशंसा से कहीं अधिक भार वहन करती हैं। "महात्मा", "नेताजी", "सरदार" — और "लौह पुरुष" — ये केवल विशेषण नहीं, बल्कि एक समूचे चारित्रिक आदर्श के संक्षिप्त रूप हैं। जब भारतीय जनमानस "लौह पुरुष" शब्द सुनता है, तो उसके मन में एक विशिष्ट चित्र उभरता है: एक ऐसा व्यक्ति जो दबाव में टूटता नहीं, जो लोकप्रियता के प्रलोभन में बहकता नहीं, और जो राष्ट्र के दीर्घकालिक हित को तात्कालिक राजनीतिक सुविधा से ऊपर रखता है।

इसी सांस्कृतिक भार के कारण, इस उपाधि का किसी समकालीन नेता के साथ जोड़ा जाना एक गंभीर दावा है — न कि एक सतही चापलूसी। जब टिप्पणीकार, विचारक और स्वयं सरकार अमित शाह को पटेल की "लौह-परंपरा" का उत्तराधिकारी कहते हैं, तो वे एक विशिष्ट चारित्रिक निरंतरता का दावा कर रहे हैं। इस अध्याय का कार्य इस दावे की पड़ताल करना है — न केवल यह पूछना कि क्या शाह दृढ़ हैं, बल्कि यह कि क्या उनकी दृढ़ता उसी प्रकार की है जो पटेल की पहचान थी: लोकतांत्रिक, संवैधानिक, और राष्ट्र की एकता पर केंद्रित।

“लौह पुरुष” का अर्थ

पटेल को “लौह पुरुष” कहे जाने का आधार उनका वह रिकॉर्ड था जिसमें उन्होंने दृढ़ता और निर्णायकता से 565 रियासतों को एकीकृत किया। यह उपाधि किसी सैन्य विजय या क्रूरता का प्रतीक नहीं थी; यह चरित्र की उस दृढ़ता का प्रतीक थी जो आवश्यकता पड़ने पर कठोर निर्णय ले सकती है, परंतु जिसका मूल उद्देश्य राष्ट्र की एकता है।

यही गुण अमित शाह में दिखाई देता है। जब उन्होंने अनुच्छेद 370 का निरसन किया, या जब उन्होंने सीएए पर “चाहे जो हो जाए” की घोषणा की, या जब वे संसद में आलोचना की आँधी के बीच स्थिर खड़े रहे — हर बार वे उसी “लौह” चरित्र का प्रदर्शन कर रहे थे जो पटेल की पहचान थी। यह कोई संयोग नहीं कि टिप्पणीकार उन्हें पटेल की “लौह-परंपरा” का उत्तराधिकारी कहते हैं।

बारडोली से उपजी एक उपाधि

“लौह पुरुष” की उपाधि को समझने के लिए हमें उसकी जड़ों तक जाना होगा। यह उपाधि किसी सरकार या दल द्वारा प्रदत्त नहीं थी; इसका मूल जन-स्तरीय था। 1928 के बारडोली सत्याग्रह में, जब पटेल ने 22 प्रतिशत की भू-राजस्व वृद्धि के विरुद्ध किसानों का नेतृत्व किया और ब्रिटिश सत्ता को पीछे हटने पर विवश किया, तो बारडोली तालुका की महिलाओं ने उन्हें “सरदार” — अर्थात् नेता, मुखिया — की उपाधि दी। यह एक नीचे-से-ऊपर की, स्वदेशी श्रद्धांजलि थी।

यही जन-स्तरीय वैधता “लौह पुरुष” की उपाधि का सच्चा आधार है। यह किसी सिंहासन या पदवी से नहीं, बल्कि उस दृढ़ता से उपजी जो जन-कल्याण और राष्ट्र-हित के लिए सत्ता के सामने अडिग रही। और यही गुण इस उपाधि को एक व्यक्तिगत सम्मान से अधिक — एक परंपरा — बनाता है। जब हम कहते हैं कि यह परंपरा पटेल से शाह तक संचरित होती है, तो हम किसी रक्त-संबंध या उत्तराधिकार की बात नहीं कर रहे, बल्कि उस चारित्रिक गुण की निरंतरता की बात कर रहे हैं — दृढ़ता, निर्णायकता, और राष्ट्र की एकता के प्रति अविचल निष्ठा।

बिस्मार्क की तुलना: समानता और अंतर

पटेल की तुलना प्रायः जर्मनी के "लौह चांसलर" ओटो फ़ॉन बिस्मार्क से की जाती है, जिसने 39 बिखरे जर्मन राज्यों को एकीकृत कर एक जर्मन साम्राज्य की स्थापना की। यह तुलना समझने योग्य है — दोनों ने अभूतपूर्व बाधाओं के विरुद्ध बिखरे क्षेत्रों को एकीकृत किया, और दोनों एक एकीकृत राष्ट्र को शक्ति और स्थिरता का स्रोत मानते थे।

परंतु यह तुलना एक महत्वपूर्ण अंतर पर भी प्रकाश डालती है। बिस्मार्क ने "रक्त और लौह" की नीति अपनाई — ऑस्ट्रिया और फ़्रांस के विरुद्ध युद्धों से प्रशियाई प्रभुत्व स्थापित किया, और एक सत्तावादी राजतंत्र खड़ा किया जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का दमन था। पटेल, इसके विपरीत, मुख्यतः अनुनय, समझौते और विलय-पत्र के माध्यम से एकीकरण किया, और एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की नींव रखी जहाँ सभी धर्मों को समान माना गया।

यह अंतर महत्वपूर्ण है, और यह अमित शाह की कश्मीर-कार्रवाई की विशिष्टता को भी रेखांकित करता है। शाह ने अनुच्छेद 370 का निरसन बिस्मार्क की "रक्त और लौह" की शैली में नहीं, बल्कि पटेल की संवैधानिक शैली में किया — संसदीय प्रक्रिया, राष्ट्रपति-आदेश, और सर्वोच्च न्यायालय की मुहर के माध्यम से। इस प्रकार शाह बिस्मार्क के नहीं, बल्कि पटेल के उत्तराधिकारी हैं — एक ऐसे लौह पुरुष के जो दृढ़ता को लोकतंत्र के साथ जोड़ता है।

हैदराबाद और जूनागढ़: दृढ़ता का व्यावहारिक रूप

पटेल की "लौह" दृढ़ता को उनके दो निर्णायक प्रकरणों में सबसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है — जूनागढ़ और हैदराबाद। जूनागढ़ में, जहाँ नवाब ने भौगोलिक असंगति के बावजूद पाकिस्तान में विलय की घोषणा की, पटेल ने यह सिद्धांत स्थापित किया कि निर्णय जनता का होना चाहिए, केवल शासक का नहीं। दबाव, नाकेबंदी और अंततः 20 फरवरी 1948 के जनमत-संग्रह — जिसमें 99.95 प्रतिशत मतदाताओं ने भारत को चुना — के माध्यम से जूनागढ़ का भारत में विलय हुआ।

हैदराबाद में, जहाँ निज़ाम स्वतंत्रता चाहता था और रज़ाकारों का आतंक व्याप्त था, पटेल ने "बातचीत के प्रति कोई धैर्य नहीं" दिखाया। सितंबर 1948 के "ऑपरेशन पोलो" में, लगभग 35,000 भारतीय सैनिकों ने पाँच दिनों में निज़ाम की सेना को परास्त कर दिया, और निज़ाम ने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर किए। परंतु यहाँ भी पटेल की लौह दृढ़ता का एक मानवीय पक्ष था — जब सुंदरलाल समिति ने सांप्रदायिक हिंसा में हुई मृत्यु का आकलन प्रस्तुत किया, तो पटेल ने इस अतिरेक पर क्रोध व्यक्त किया और उसे अस्वीकार किया। यह दर्शाता है कि "लौह पुरुष" का अर्थ क्रूरता नहीं, बल्कि वह दृढ़ता है जो आवश्यकता पड़ने पर निर्णायक कार्रवाई करती है, परंतु जिसका नैतिक केंद्र सदा मानवीय रहता है।

यही व्यावहारिक दृढ़ता शाह के प्रकरणों में प्रतिध्वनित होती है। जैसे पटेल ने जूनागढ़ और हैदराबाद के अधूरे एकीकरण को पूर्ण किया, वैसे ही शाह ने जम्मू-कश्मीर के उस अधूरे कार्य को पूर्ण किया, जिसे पटेल एक अपूर्ण खिड़की के रूप में छोड़ गए थे। अंतर केवल साधन का है — पटेल का साधन कूटनीति और बल का मिश्रण था, शाह का साधन संविधान और संसदीय बहुमत।

"इस्पात का ढाँचा": संस्था-निर्माण का लौह आयाम

"लौह पुरुष" की उपाधि का एक आयाम प्रायः उपेक्षित रह जाता है — और वह है संस्था-निर्माण। पटेल की दृढ़ता केवल रियासतों के एकीकरण में नहीं, बल्कि उस स्थायी प्रशासनिक ढाँचे के निर्माण में भी प्रकट हुई जिसे उन्होंने स्वयं "इस्पात का ढाँचा" कहा। 26 जनवरी 1950 को गठित अखिल भारतीय सेवाओं की रक्षा करते हुए, उन्होंने संविधान सभा में कहा: "इस प्रशासनिक व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है... ये लोग ही वह उपकरण हैं। इन्हें हटा दीजिए, और मुझे पूरे देश में अराजकता के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता।"

यह दूरदर्शिता "लौह" चरित्र का एक गहरा आयाम है — कि दृढ़ता का अर्थ केवल क्षण की निर्णायकता नहीं, बल्कि उन स्थायी संस्थाओं का निर्माण भी है जो किसी एक व्यक्ति के जाने के बाद भी राष्ट्र को सँभाले रखें। पटेल का "इस्पात का ढाँचा" इसी सिद्धांत पर बना था: एक ऐसी सेवा जिसमें अधिकारी को इतनी सुरक्षा प्राप्त हो कि वह किसी पक्षपाती मुख्यमंत्री को "नहीं" कह सके।

यही संस्था-निर्माण का लौह आयाम शाह में भी प्रकट होता है — चाहे वह भाजपा का स्थायी संगठनात्मक ढाँचा हो, गुजरात का फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय हो, पुलिस-तंत्र का सीसीटीएनएस नेटवर्क हो, या सहकारिता क्षेत्र का त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय। दोनों लौह पुरुषों के लिए, राष्ट्र-निर्माण केवल नाटकीय क्षणों का नहीं, बल्कि उन मौन, स्थायी ढाँचों का भी नाम है जो पीढ़ियों तक टिकते हैं। यही वह आयाम है जो "लौह पुरुष" की उपाधि को मात्र दृढ़ता से ऊपर उठाकर एक स्थायी रचनात्मकता तक ले जाता है।

गति बनाम धैर्य

बिस्मार्क और पटेल की तुलना का एक और आयाम है — गति। बिस्मार्क ने अपेक्षाकृत तीव्र गति से, युद्धों के माध्यम से एकीकरण किया। पटेल ने भी अठारह महीनों की उल्लेखनीय गति से रियासतों का एकीकरण किया, परंतु उनका साधन बल नहीं, बल्कि कूटनीति और दृढ़ता का मिश्रण था।

अमित शाह की शैली इन दोनों से भिन्न है — और यही उसकी विशिष्टता है। शाह की गति "धैर्यपूर्ण गति" है। वे पंद्रह वर्ष तक संगठन गढ़ने का धैर्य रखते हैं, और फिर निर्णायक क्षण आने पर तीव्रता से कार्य करते हैं। अनुच्छेद 370 का निरसन इसका आदर्श उदाहरण है — दशकों की प्रतीक्षा और तैयारी, और फिर एक ही दिन में निर्णायक कार्रवाई। यह बिस्मार्क की तात्कालिक तीव्रता और पटेल की कूटनीतिक धैर्य, दोनों का एक अद्वितीय संश्लेषण है।

संख्या और साधन: एक तुलनात्मक लेखा

बिस्मार्क और पटेल की तुलना को संख्याओं की कसौटी पर रखना उपयोगी है, क्योंकि इससे दोनों की चुनौती का सापेक्ष परिमाण स्पष्ट होता है। बिस्मार्क ने लगभग 39 जर्मन राज्यों को एकीकृत किया; पटेल ने लगभग 562 रियासतों को। यह अंतर मात्र संख्यात्मक नहीं — यह जटिलता का अंतर है। 562 स्वतंत्र शासक, प्रत्येक अपनी सेना, मुद्रा, परंपरा और महत्वाकांक्षा के साथ; और इन सबको एक नवजात, विभाजन से रक्तरंजित राष्ट्र में, लगभग अठारह महीनों के भीतर पिरोना — यह विश्व-इतिहास में एक अद्वितीय उपलब्धि है।

और साधन का अंतर तो और भी मौलिक है। बिस्मार्क का साधन था "रक्त और लौह" — ऑस्ट्रिया (1866) और फ़्रांस (1870–71) के विरुद्ध युद्ध, जिनसे प्रशियाई प्रभुत्व स्थापित हुआ। पटेल का प्रमुख साधन था विलय-पत्र (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन) — एक ऐसा विधिक दस्तावेज़ जो केवल रक्षा, विदेश और संचार को केंद्र को सौंपता था, और इतना सीमित था कि शासक अपनी प्रतिष्ठा खोए बिना उस पर हस्ताक्षर कर सकें। यह वी. पी. मेनन की "बातचीत-चाय-भोजन" की कूटनीति थी, जिसमें बल सदा आरक्षित रहा, परंतु प्राथमिक साधन सदा अनुनय रहा। केवल जूनागढ़, हैदराबाद और जम्मू-कश्मीर ही अपवाद थे, जहाँ अधिक कठोर साधन की आवश्यकता पड़ी।

दो भिन्न राष्ट्र: राजतंत्र बनाम गणराज्य

तुलना का सबसे गहन आयाम यह है कि बिस्मार्क और पटेल ने जो राष्ट्र गढ़े, वे मूलतः भिन्न प्रकृति के थे। बिस्मार्क ने एक सत्तावादी प्रशियाई राजतंत्र खड़ा किया, जिसका केंद्र सम्राट और सेना थी, और जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं को गौण स्थान प्राप्त था। पटेल ने, इसके विपरीत, एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की नींव रखी — जहाँ सभी धर्मों को समान माना गया, और जहाँ सत्ता का स्रोत जनता थी।

यह अंतर पटेल के अपने आचरण में प्रकट होता है। 3 जनवरी 1948 को कलकत्ता के मैदान में दिए अपने भाषण में, पटेल ने — जो स्वयं संगठनात्मक रूप से दृढ़ थे — आरएसएस से "भारत के संविधान का सम्मान" करने का आग्रह किया। यहाँ हम एक ऐसे लौह पुरुष को देखते हैं जो असहमति के बावजूद लोकतांत्रिक संरचना के प्रति समर्पित रहता है। उनका प्रसिद्ध कथन — "धर्म मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है" (एर्नाकुलम, 15 मई 1950) — इसी गणराज्यीय दृष्टि की अभिव्यक्ति है।

यही गणराज्यीय भावना शाह की कार्यशैली में प्रतिध्वनित होती है। जब उन्होंने अनुच्छेद 370 का निरसन किया, तो साधन बिस्मार्क का "रक्त और लौह" नहीं था, बल्कि पटेल का संवैधानिक मार्ग था — संवैधानिक आदेश 272 और 273, संसद में बहुमत, और अंततः 11 दिसंबर 2023 को सर्वोच्च न्यायालय की पाँच-सदस्यीय

पीठ की सर्वसम्मत पुष्टि। इस प्रकार शाह बिस्मार्क के नहीं, बल्कि पटेल के उत्तराधिकारी सिद्ध होते हैं — दृढ़ता को लोकतंत्र और संविधान के अनुशासन के साथ जोड़ने वाले लौह पुरुष के।

तंत्र का रूपांतरण: बाह्य-संवैधानिक से संवैधानिक तक

पटेल से शाह तक की निरंतरता में एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण रूपांतरण भी है, जिसे ईमानदारी से रेखांकित करना चाहिए। पटेल को एक ऐसे युग में कार्य करना था जहाँ संवैधानिक ढाँचा अभी निर्मित हो रहा था; अतः उनके पास बाह्य-संवैधानिक दबाव के साधन उपलब्ध थे — विलय-पत्र, प्रिवी पर्स, नाकेबंदी, और अंततः "पुलिस कार्रवाई"। शाह को एक परिपक्व, स्थापित संवैधानिक व्यवस्था में कार्य करना है; अतः उनका साधन पूर्णतः संवैधानिक है — संसदीय बहुमत और न्यायिक पुष्टि।

यही कारण है कि कुछ टिप्पणीकार शाह को "पटेल 2.0" कहते हैं — वही लक्ष्य (राष्ट्रीय एकीकरण), परंतु एक उन्नत, पूर्णतः संवैधानिक साधन के माध्यम से। राम माधव का यह कथन (7 नवंबर 2020) इसी निरंतरता को व्यक्त करता है कि "यदि सरदार पटेल भारत के पहले प्रधानमंत्री होते, तो जम्मू-कश्मीर की कोई समस्या ही न होती।" यह कथन पटेल की दृढ़ता को शाह की कार्रवाई के साथ एक ही ऐतिहासिक चाप में पिरोता है।

एक परंपरा का संचरण

अंततः, "लौह पुरुष" की उपाधि एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक परंपरा की पहचान है — एक ऐसी परंपरा जो राष्ट्र की एकता को सर्वोपरि मानती है, जो आलोचना के सामने अडिग रहती है, और जो दृढ़ता को लोकतांत्रिक और संवैधानिक मार्ग के साथ जोड़ती है।

पटेल इस परंपरा के संस्थापक थे; और इस पुस्तक के अनुसार, अमित शाह इसके समकालीन उत्तराधिकारी हैं। यह उपाधि कोई स्वयं-प्रदत्त सम्मान नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक निरंतरता की स्वीकृति है — जिसे स्वयं भाजपा, उसके विचारक, और सरकार ने बार-बार रेखांकित किया है। और इस निरंतरता का सबसे

विशाल, सबसे दृश्यमान प्रतीक है — एकता की प्रतिमा, जिसकी कथा अगले अध्याय की है।

❦

अध्याय 18

एकता की प्रतिमा: पटेल-विरासत का स्मारक

गुजरात के केवड़िया में, नर्मदा नदी के तट पर, एक 182 मीटर ऊँची प्रतिमा खड़ी है — विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा। यह सरदार वल्लभभाई पटेल की प्रतिमा है, और इसका नाम है — "स्टैचू ऑफ़ यूनिटी", अर्थात् एकता की प्रतिमा। यह केवल एक स्मारक नहीं है; यह पटेल-शाह निरंतरता का सबसे दृश्यमान और सुविचारित प्रतीक है।

प्रतिमाओं की भाषा

प्रतिमाएँ किसी राष्ट्र की मूक भाषा होती हैं। वे बताती हैं कि एक समाज किसे स्मरण करना चाहता है, किसे आदर्श मानता है, और किन मूल्यों को आगामी पीढ़ियों तक संप्रेषित करना चाहता है। एक राष्ट्र अपनी प्रतिमाओं के माध्यम से अपनी आत्म-छवि गढ़ता है — और इसीलिए यह अत्यंत सार्थक है कि स्वतंत्र भारत ने अपनी सबसे विशाल प्रतिमा किसके लिए समर्पित करने का निर्णय लिया।

विश्व के अनेक देशों में, सबसे ऊँची प्रतिमाएँ धार्मिक आकृतियों, सम्राटों या सैन्य विजेताओं की हैं। भारत ने, इसके विपरीत, अपनी सर्वोच्च प्रतिमा एक ऐसे राजनेता को समर्पित की जिसकी पहचान विजय नहीं, बल्कि एकीकरण थी — जिसने तलवार से नहीं, बल्कि अनुनय और विलय-पत्र से एक राष्ट्र को पिरोया। यह चयन स्वयं में एक मूल्य-वक्तव्य है: कि भारत एकता को अपना सर्वोच्च राजनीतिक मूल्य मानता है, और कि एकीकरण का कार्य विजय के कार्य से अधिक स्मरणीय है। इसी मूक भाषा को समझे बिना एकता की प्रतिमा का पूर्ण अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता।

एक प्रतिमा के आँकड़े

एकता की प्रतिमा का उद्घाटन 31 अक्टूबर 2018 को, पटेल की 143वीं जयंती पर, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा किया गया। इसकी ऊँचाई — 182 मीटर — जानबूझकर गुजरात विधानसभा की 182 सीटों के अनुरूप चुनी गई। इसका निर्माण लार्सन एंड टुब्रो द्वारा लगभग 2,989 करोड़ रुपये की लागत से हुआ, और इसके मूर्तिकार थे राम वी. सुतार। इस प्रतिमा की संकल्पना 2010 में, तत्कालीन मुख्यमंत्री मोदी द्वारा की गई थी।

ये आँकड़े स्वयं में एक कथा कहते हैं। विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा का किसी सैन्य विजेता या सम्राट की नहीं, बल्कि एक ऐसे राजनेता की होना जिसने बिखरे राष्ट्र को एकीकृत किया — यह स्वयं में एक राजनीतिक और सांस्कृतिक वक्तव्य है।

एक अभियांत्रिक उपलब्धि

एकता की प्रतिमा केवल एक प्रतीकात्मक स्मारक नहीं; यह एक असाधारण अभियांत्रिक उपलब्धि भी है। 182 मीटर की ऊँचाई पर खड़ी यह प्रतिमा अमेरिका की स्वतंत्रता-प्रतिमा से लगभग दोगुनी ऊँची है। इसके निर्माण में लार्सन एंड टुब्रो ने उन्नत संरचनात्मक अभियांत्रिकी का प्रयोग किया — कांस्य-आवरण, इस्पात-ढाँचा, और एक ऐसी नींव जो नर्मदा के तट पर भूकंपीय और पवन-दबावों को सह सके।

प्रतिमा के भीतर एक संग्रहालय, एक प्रदर्शनी-कक्ष, और एक दर्शक-दीर्घा है, जो आगंतुकों को पटेल के वक्ष-स्थल की ऊँचाई तक ले जाती है, जहाँ से सरदार सरोवर बाँध और आसपास की घाटी का विहंगम दृश्य दिखाई देता है। इस प्रकार यह प्रतिमा एक स्थिर स्मारक मात्र नहीं, बल्कि एक जीवंत पर्यटन-केंद्र बन गई है, जो हर वर्ष लाखों आगंतुकों को आकर्षित करती है और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था तथा रोज़गार में योगदान देती है। यह दर्शाता है कि स्मारक-निर्माण को आर्थिक विकास और जन-भागीदारी से जोड़ा गया है — एक ऐसा प्रयास जो प्रतीक को व्यावहारिक उपयोगिता के साथ संयोजित करता है।

पटेल का पुनर्स्थापन

एकता की प्रतिमा का गहरा महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह पटेल को भारतीय राष्ट्रीय स्मृति में एक केंद्रीय स्थान पर पुनर्स्थापित करती है। स्वतंत्रता के पश्चात के दशकों में, भारतीय राजनीतिक आख्यान में नेहरू को केंद्रीय स्थान मिला, जबकि पटेल का योगदान अपेक्षाकृत पृष्ठभूमि में रहा।

मोदी और शाह की भाजपा ने इस असंतुलन को सुधारने का सुविचारित प्रयास किया। एकता की प्रतिमा इस प्रयास का सबसे मूर्त रूप है — एक ऐसा स्मारक जो पटेल को स्वतंत्रता-युग के अनेक नेताओं में से एक के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक भारत के प्रमुख शिल्पकार के रूप में स्थापित करता है।

राष्ट्रीय एकता दिवस

प्रतिमा के साथ-साथ, हर 31 अक्टूबर — पटेल की जयंती — को "राष्ट्रीय एकता दिवस" (राष्ट्रीय एकता दिवस) के रूप में मनाया जाता है, जिसमें देश भर में "एकता दौड़" (रन फ़ॉर यूनिटी) का आयोजन होता है। गृह मंत्री के रूप में अमित शाह स्वयं इन आयोजनों का नेतृत्व करते हैं।

31 अक्टूबर 2019 को, शाह ने पटेल की 144वीं जयंती पर "एकता दौड़" को हरी झंडी दिखाई। 2022 में उन्होंने कहा कि "पटेल के दूरदर्शी एकीकरण — 562 रियासतों का — ने ब्रिटिश 'विभाजन' की नीति का निर्णायक रूप से प्रतिकार किया।" इस प्रकार राष्ट्रीय एकता दिवस का यह वार्षिक अनुष्ठान पटेल को वर्तमान एकीकरणवादी नीति के साथ जोड़ता है।

केवड़िया का रूपांतरण: स्मारक से क्षेत्र-विकास तक

एकता की प्रतिमा का एक कम-चर्चित किंतु महत्वपूर्ण आयाम है — केवड़िया क्षेत्र का समग्र रूपांतरण। एक समय जो नर्मदा तट का एक अपेक्षाकृत अविकसित क्षेत्र था, वह अब एक प्रमुख पर्यटन-गंतव्य बन गया है, जहाँ संग्रहालय, उद्यान, और आगंतुक-सुविधाएँ विकसित की गई हैं। यह दर्शाता है कि प्रतीकात्मक स्मारक-निर्माण को क्षेत्रीय आर्थिक विकास के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया।

यह संयोजन स्वयं शाह-मोदी की कार्यशैली का एक हस्ताक्षर है: प्रतीक को कभी प्रतीक मात्र नहीं रहने देना, बल्कि उसे व्यावहारिक उपयोगिता — रोज़गार, पर्यटन, अवसंरचना — से जोड़ना। जैसे राष्ट्र-निर्माण के अन्य आयामों में नक्सलवाद-विरोध को सड़कों और बैंकों के विकास से जोड़ा गया, वैसे ही पटेल-स्मृति के इस स्मारक को क्षेत्रीय समृद्धि से जोड़ा गया। यह आलोचकों की उस आपत्ति का — कि यह केवल एक महँगा प्रतीकात्मक स्मारक है — एक व्यावहारिक प्रत्युत्तर भी है: कि यह स्मारक एक जीवंत आर्थिक केंद्र है, न कि एक निष्क्रिय मूर्ति।

एक सुविचारित स्थापत्य

यहाँ एक गहन अंतर्दृष्टि है। एकता की प्रतिमा, राष्ट्रीय एकता दिवस, और अनुच्छेद 370 का निरसन — ये तीनों मिलकर एक सुविचारित प्रतीकात्मक स्थापत्य का निर्माण करते हैं। यह स्थापत्य पटेल, अनुच्छेद 370, और शाह को जन-स्मृति में एक ही सूत्र में पिरोता है: पटेल जिसने एकीकरण आरंभ किया, और शाह जिसने उसे पूर्ण किया।

यह स्थापत्य आकस्मिक नहीं है। यह इस तथ्य की स्वीकृति है कि जो व्यक्ति या दल पटेल की विरासत पर अधिकार रखता है, वह आगामी दशकों में भारत की उत्पत्ति-कथा की व्याख्या पर भी अधिकार रखता है। और इसी कारण, एकता की प्रतिमा केवल एक श्रद्धांजलि नहीं, बल्कि एक राजनीतिक और सांस्कृतिक दावा है।

एक संकल्पना की यात्रा: 2010 से 2018 तक

एकता की प्रतिमा की कथा 2010 में आरंभ होती है, जब गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसकी संकल्पना की। यह आठ-वर्षीय यात्रा — संकल्पना से उद्घाटन तक — स्वयं में उसी "धैर्यपूर्ण गति" का उदाहरण है जो मोदी-शाह की कार्यशैली की पहचान है। एक विशाल, अभूतपूर्व परियोजना को धैर्य के साथ चरण-दर-चरण आगे बढ़ाना, और फिर एक प्रतीकात्मक तिथि पर उसे पूर्ण करना।

प्रतिमा का निर्माण लार्सन एंड टुब्रो (एल एंड टी) द्वारा किया गया, और इसके मूर्तिकार थे पद्म-सम्मानित राम वी. सुतार — जिन्होंने पटेल की आकृति को न केवल भौतिक विशालता, बल्कि एक स्थिर, दृढ़ गरिमा के साथ गढ़ा। प्रतिमा की कुल

लागत लगभग 2,989 करोड़ रुपये (लगभग 42 करोड़ डॉलर) रही। और इसका उद्घाटन एक सुविचारित तिथि पर हुआ — 31 अक्टूबर 2018, पटेल की 143वीं जयंती। तिथि का यह चयन आकस्मिक नहीं; यह प्रतिमा को सीधे पटेल की स्मृति-तिथि से जोड़ता है, ताकि हर वर्ष यह दिन राष्ट्रीय स्मृति में पटेल को पुनर्जीवित करे।

ऊँचाई की प्रतीकात्मकता

एकता की प्रतिमा की 182 मीटर की ऊँचाई केवल एक अभियांत्रिक उपलब्धि नहीं — यह एक सुविचारित प्रतीकात्मक वक्तव्य है। यह ऊँचाई जानबूझकर गुजरात विधानसभा की 182 सीटों के अनुरूप चुनी गई, जो प्रतिमा को लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के विचार से जोड़ती है। और यह तथ्य कि विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा किसी सैन्य विजेता, सम्राट या धार्मिक आकृति की नहीं, बल्कि एक ऐसे राजनेता की है जिसने बिखरे राष्ट्र को संवाद और विलय-पत्र के माध्यम से एकीकृत किया — यह स्वयं में एक मूल्य-वक्तव्य है।

विश्व की अनेक विशाल प्रतिमाएँ शक्ति, विजय या दिव्यता का उत्सव मनाती हैं। एकता की प्रतिमा, इसके विपरीत, "एकता" का उत्सव मनाती है — एक राजनीतिक मूल्य का, एक नागरिक उपलब्धि का। यह स्वयं उस दर्शन की भौतिक अभिव्यक्ति है जो इस पुस्तक का केंद्रीय विषय है: कि राष्ट्र की एकता ही सर्वोच्च मूल्य है।

स्मृति की राजनीति: एक असंतुलन का सुधार

एकता की प्रतिमा को समझने के लिए भारतीय राष्ट्रीय स्मृति की राजनीति को समझना आवश्यक है। स्वतंत्रता के पश्चात के दशकों में, भारतीय राजनीतिक आख्यान में जवाहरलाल नेहरू और उनके परिवार को केंद्रीय स्थान प्राप्त रहा — अनेक संस्थाएँ, योजनाएँ और सार्वजनिक स्थल उनके नाम पर समर्पित हुए। इस आख्यान में पटेल का योगदान, यद्यपि स्वीकार किया गया, अपेक्षाकृत पृष्ठभूमि में रहा।

मोदी और शाह की भाजपा ने इस असंतुलन को एक सुविचारित ऐतिहासिक सुधार के रूप में प्रस्तुत किया। राम माधव का यह कथन (7 नवंबर 2020) इसी

दृष्टि को व्यक्त करता है कि "यदि सरदार पटेल भारत के पहले प्रधानमंत्री होते, तो जम्मू-कश्मीर की कोई समस्या ही न होती।" एकता की प्रतिमा इस सुधार का सबसे मूर्त रूप है — एक ऐसा स्मारक जो पटेल को स्वतंत्रता-युग के अनेक नेताओं में से एक के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक भारत के प्रमुख शिल्पकार के रूप में पुनर्स्थापित करता है। आलोचक इसे एक राजनीतिक रणनीति कहते हैं — पटेल को एक नेहरू-विरोधी, दक्षिण-झुकाव वाले नेता के रूप में प्रस्तुत करना। समर्थक इसे एक ऐतिहासिक न्याय कहते हैं — एक उपेक्षित राष्ट्र-निर्माता को उसका उचित स्थान देना। दोनों दृष्टियों में सत्य का अंश है, और एक ईमानदार पाठक दोनों को तौलकर अपना निष्कर्ष निकालेगा।

राष्ट्रीय एकता दिवस: स्मृति का वार्षिक अनुष्ठान

प्रतिमा के साथ-साथ, हर 31 अक्टूबर को मनाया जाने वाला "राष्ट्रीय एकता दिवस" इस स्मृति को एक जीवंत, वार्षिक अनुष्ठान में बदल देता है। 31 अक्टूबर 2019 को, गृह मंत्री के रूप में शाह ने पटेल की 144वीं जयंती पर "एकता दौड़" (रन फ़ॉर यूनिटी) को हरी झंडी दिखाई। यह वही दिन था जिस दिन जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम प्रभावी हुआ था — एक संयोग नहीं, बल्कि एक सुविचारित प्रतीकात्मक संरेखण।

2022 में, शाह ने इस अवसर पर कहा कि पटेल के दूरदर्शी एकीकरण — 562 रियासतों का — ने ब्रिटिश "विभाजन" (फ़्रैगमेंटेशन) की नीति का निर्णायक रूप से प्रतिकार किया। इस वार्षिक अनुष्ठान के माध्यम से, पटेल की ऐतिहासिक उपलब्धि को वर्तमान एकीकरणवादी नीति के साथ निरंतर जोड़ा जाता है। राष्ट्रीय एकता दिवस इस प्रकार केवल एक स्मरण-दिवस नहीं, बल्कि एक सतत संहिताबद्धता का यंत्र है — जो हर वर्ष इस संदेश को नए सिरे से दोहराता है।

एक सुविचारित प्रतीकात्मक त्रिकोण

यहाँ हम इस पुस्तक की एक केंद्रीय अंतर्दृष्टि पर पहुँचते हैं — पटेल, अनुच्छेद 370, और शाह के बीच का प्रतीकात्मक त्रिकोण। एकता की प्रतिमा (2018), जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन का 31 अक्टूबर 2019 को प्रभावी होना, और हर 31 अक्टूबर

को मनाया जाने वाला राष्ट्रीय एकता दिवस — ये तीनों एक ही सूत्र में पिरोए गए हैं। यह त्रिकोण जन-स्मृति में एक स्पष्ट आख्यान रचता है: पटेल जिसने एकीकरण का कार्य आरंभ किया, और शाह जिसने उसके शेष भाग — जम्मू-कश्मीर — को पूर्ण किया।

यह प्रतीकात्मक स्थापत्य आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे एक गहरी समझ है कि जो व्यक्ति या दल किसी राष्ट्र की उत्पत्ति-कथा के नायकों पर अधिकार रखता है, वह उस राष्ट्र की भावी दिशा की व्याख्या पर भी अधिकार रखता है। 2024 की फ़िल्म "आर्टिकल 370" में "पटेल" नामक एक पात्र — जो स्पष्ट रूप से अमित शाह पर आधारित था — इस सांस्कृतिक संरेखण का सबसे प्रत्यक्ष लोकप्रिय उदाहरण था। इस प्रकार एकता की प्रतिमा केवल एक स्मारक नहीं, बल्कि एक चलते-फिरते, जीवंत राजनीतिक-सांस्कृतिक दावे का स्थायी केंद्र-बिंदु बन गई है।

आलोचना का ईमानदार उल्लेख

बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि हम इस परियोजना की आलोचनाओं का भी विस्तार से उल्लेख करें। केवड़िया के आसपास के कुछ गाँवों के निवासियों — विशेषकर तड़वी जनजाति के लोगों — ने प्रतिमा-निर्माण के विरुद्ध भूमि-अधिकारों को लेकर प्रदर्शन किए। उद्घाटन से पूर्व लगभग 300 कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी की भी रिपोर्टें आईं। कुछ आलोचकों ने परियोजना की भारी लागत पर प्रश्न उठाए, और कुछ ने इसे एक "हिंदू राष्ट्रवादी" ढाँचे में रखकर इसकी आलोचना की।

इन आलोचनाओं का ईमानदार सामना आवश्यक है। भूमि-अधिकार और आजीविका की चिंताएँ किसी भी विशाल अवसंरचना-परियोजना के साथ जुड़ी वास्तविक चिंताएँ हैं, और इन्हें खारिज करना उचित नहीं। एक संतुलित दृष्टि यह स्वीकार करती है कि स्मारक-निर्माण और स्थानीय समुदायों के अधिकारों के बीच का तनाव एक वास्तविक नैतिक प्रश्न है — जिसका उत्तर पर्यटन, रोज़गार और क्षेत्रीय विकास के दीर्घकालिक लाभों में खोजा जाना चाहिए, न कि इन चिंताओं को अनदेखा करके।

परंतु इन आलोचनाओं के बावजूद, एकता की प्रतिमा एक ऐसा स्थायी प्रतीक बन गई है जो पटेल की विरासत को — और उसके माध्यम से, राष्ट्र-निर्माण के उस

दर्शन को जो पटेल से शाह तक संचरित होता है — मूर्त रूप देती है। यह उस दीर्घकालिक दृष्टि का स्मारक है जो इस पुस्तक का केंद्रीय विषय है।

एकता की यह प्रतिमा, अपनी विशालता में, एक सरल किंतु शक्तिशाली संदेश देती है: कि राष्ट्र की एकता ही सर्वोच्च मूल्य है, और जिन्होंने इस एकता के लिए कार्य किया — पटेल से शाह तक — वे भारत के सच्चे शिल्पकार हैं। और इसी दर्शन का सबसे व्यापक सूत्रीकरण अगले अध्याय का विषय है।

अध्याय 19
दीर्घकालिक राष्ट्रवाद बनाम अल्पकालिक तुष्टिकरण

अब हम इस पुस्तक की केंद्रीय थीसिस के हृदय तक पहुँचते हैं। अमित शाह के समस्त प्रमुख निर्णयों — अनुच्छेद 370, तीन तलाक, समान नागरिक संहिता, नागरिकता संशोधन अधिनियम, और नक्सलवाद-विरोधी अभियान — को एक ही सूत्र जोड़ता है: दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण की प्राथमिकता, अल्पकालिक राजनीतिक तुष्टिकरण के ऊपर।

एक सुसंगत दर्शन

शाह की राजनीति का सबसे उल्लेखनीय पहलू उसकी सुसंगति है। चाहे वह तीन तलाक पर बोल रहे हों ("हम तुष्टिकरण में नहीं, विकास में विश्वास करते हैं"), या समान नागरिक संहिता पर ("मुस्लिम व्यक्तिगत क़ानून को तुष्टिकरण की शुरुआत के रूप में लाया गया"), या नागरिकता पर ("मोदी सरकार जिस एकमात्र धर्म का पालन करती है, वह भारत का संविधान है") — हर बार वही मूल विभाजन प्रकट होता है: राष्ट्रहित बनाम तुष्टिकरण।

यह कोई आकस्मिक नारेबाज़ी नहीं, बल्कि एक सुविचारित राजनीतिक दर्शन है। इसका मूल तर्क यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात दशकों तक भारतीय राजनीति "वोट-बैंक तुष्टिकरण" से संचालित होती रही — जहाँ समुदाय-विशेष को अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के लिए विशेष व्यवहार दिया गया, राष्ट्र की दीर्घकालिक एकता और समानता की क़ीमत पर। शाह का दावा है कि उन्होंने और मोदी ने इस प्रतिमान को उलट दिया — "प्रदर्शन-आधारित विकास की राजनीति" से "तुष्टिकरण की राजनीति" को प्रतिस्थापित किया।

एक सुसंगत रचनात्मक लिपि

शाह की राजनीति की सुसंगति केवल विचार-स्तर पर नहीं, बल्कि उनकी प्रस्तुति की लिपि-स्तर पर भी दिखाई देती है। चाहे मंच राज्यसभा हो, कोई चुनावी रैली हो, या कोई संवैधानिक-वर्षगाँठ की बहस — शाह का मूल आख्यान लगभग अपरिवर्तित रहता है। 18 दिसंबर 2024 को राज्यसभा में संविधान की 75वीं वर्षगाँठ की बहस में, उन्होंने घोषणा की कि भाजपा अपने शासन वाले हर राज्य में समान नागरिक संहिता लाएगी और कांग्रेस पर "तुष्टिकरण की राजनीति" का आरोप लगाया। 1 जून 2025 को कोलकाता की "विजय संकल्प" रैली में, उन्होंने तृणमूल कांग्रेस पर "घुसपैठ, राजनीतिक हिंसा और तुष्टिकरण की राजनीति" का आरोप लगाया।

इस सुसंगति का राजनीतिक महत्व गहरा है। एक राजनेता जो हर मंच पर एक ही मूल संदेश दोहराता है, वह उस संदेश को जन-स्मृति में एक स्थायी ढाँचे के रूप में स्थापित कर देता है। यह वही पद्धति है जो विज्ञापन और जन-संचार में "संदेश-अनुशासन" कहलाती है। शाह इस अनुशासन के स्वामी हैं — वे राष्ट्रहित बनाम तुष्टिकरण के विभाजन को इतनी बार, इतने सुसंगत रूप से दोहराते हैं कि वह अंततः सार्वजनिक विमर्श का एक स्थायी निर्देशांक बन जाता है। यह स्वयं उनकी "स्थानांतरित अनुशासन" की पद्धति का एक और रूप है — जैसे वे संगठन में अनुशासन लाते हैं, वैसे ही वे विमर्श में।

चार साझा विशेषताएँ

शाह के पाँच प्रमुख निर्णयों में एक समान चार-सूत्री ढाँचा दिखाई देता है:

पहला, **संसदीय गरिमा के साथ तीव्र निष्पादन** — दोनों सदनों में आत्मविश्वासपूर्ण तर्क-प्रस्तुति, चाहे विपक्ष बहिर्गमन करे या विरोध करे।

दूसरा, **संस्थापकों का चिकित्सकीय उद्धरण** — डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी (एकीकरण), बी. आर. आंबेडकर (संवैधानिक क्रियान्वयन की नैतिकता), और सबसे बढ़कर सरदार पटेल (राष्ट्रीय एकता) का बार-बार आह्वान, ताकि हर क़दम को एक 75-वर्षीय संवैधानिक चाप में रखा जा सके न कि अवसरवादी राजनीति के रूप में।

तीसरा, **राज्य-स्तरीय प्रयोगशाला से राष्ट्रीय एकरूपता** — समान नागरिक संहिता का उत्तराखंड → गुजरात → असम क्रम इसका आदर्श उदाहरण है।

चौथा, **समान-अधिकार का ढाँचा नैतिक रीढ़ के रूप में** — तीन तलाक ("करोड़ों मुस्लिम महिलाओं के लिए गरिमा और समानता") से लेकर समान नागरिक संहिता ("क़ानून के समक्ष समानता") से लेकर अनुच्छेद 370 ("महिला-विरोधी, दलित-विरोधी, जनजाति-विरोधी व्यवस्था का अंत") तक।

पटेल से शाह: एक संचरण

यह दर्शन पटेल की परंपरा का सीधा संचरण है। पटेल ने 565 रियासतों के एकीकरण में वही प्राथमिकता दिखाई थी — राष्ट्र की एकता को क्षेत्रीय या सांप्रदायिक हितों से ऊपर रखना। जब उन्होंने हैदराबाद में निर्णायक कार्रवाई की, या जब उन्होंने अलग निर्वाचक-मंडलों का विरोध किया, तो वे उसी सिद्धांत पर चल रहे थे जिस पर शाह आज चलते हैं।

अंतर केवल युग और साधन का है। पटेल को एक राष्ट्र का भौतिक एकीकरण करना था, और उनके पास विभाजन-उपरांत का एक तात्कालिक अवसर-खिड़की थी। शाह को आधी सदी बाद भारत की "भारतीयता" का एकीकरण करना है — और इसे महीनों में नहीं, बल्कि दशकों तक टिकाना है। यही कारण है कि शाह का दर्शन एक विस्तृत प्रतीकात्मक स्थापत्य के साथ आता है — राष्ट्रीय एकता दिवस, स्टैचू ऑफ़ यूनिटी, और राष्ट्रीय एकता की निरंतर संहिताबद्धता।

स्टैचू ऑफ़ यूनिटी: पटेल-विरासत का स्मारक

इस संचरण का सबसे दृश्यमान प्रतीक है **स्टैचू ऑफ़ यूनिटी** — केवड़िया, गुजरात में खड़ी 182 मीटर ऊँची प्रतिमा, जिसका उद्घाटन 31 अक्टूबर 2018 को, पटेल की 143वीं जयंती पर, प्रधानमंत्री मोदी द्वारा किया गया। यह विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा है, और इसकी ऊँचाई (182 मीटर) जानबूझकर गुजरात विधानसभा की 182 सीटों के अनुरूप चुनी गई थी।

यह प्रतिमा केवल एक श्रद्धांजलि नहीं है; यह भाजपा द्वारा पटेल को स्वतंत्रता-युग के एक व्यक्ति से, वर्तमान एकीकरणवादी नीति के एक स्थायी प्रतीकात्मक

सहयोगी के रूप में उन्नत करने का एक सुविचारित प्रयास है। हर 31 अक्टूबर को मनाया जाने वाला "राष्ट्रीय एकता दिवस" और "एकता दौड़" इसी संहिताबद्धता को सुदृढ़ करते हैं।

आलोचना का सामना, बिना झुके

यह स्वीकार करना बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि शाह के हर निर्णय की तीखी आलोचना हुई। अनुच्छेद 370 पर कश्मीरी निवासियों में भय और केंद्रीकरण की चिंताएँ उठाई गईं; सीएए पर धार्मिक-भेदभाव के आरोप लगे; समान नागरिक संहिता पर अल्पसंख्यक-लक्ष्यीकरण की आशंकाएँ व्यक्त की गईं; और संघवाद पर केंद्रीकरण की आपत्तियाँ उठीं।

परंतु यहीं पर शाह की वह विशेषता प्रकट होती है जो उन्हें एक सच्चा राष्ट्र-निर्माता बनाती है। एक राष्ट्र-निर्माता आलोचना से न तो भयभीत होता है, न उससे मुँह मोड़ता है; वह उसका सामना करता है, अपना तर्क दोहराता है, और अपने दीर्घकालिक संकल्प पर डटा रहता है। शाह का प्रत्युत्तर हर मामले में सुसंगत रहा: कि राष्ट्र का दीर्घकालिक हित किसी समुदाय-विशेष के अल्पकालिक तुष्टिकरण से ऊपर है, और कि समानता का सिद्धांत किसी विशेष व्यवहार की माँग नहीं, बल्कि सबके लिए एक समान विधान की माँग करता है।

(इस पुस्तक के परिशिष्ट में प्रत्येक प्रमुख निर्णय की प्रमुख आलोचनाओं और उनके प्रत्युत्तरों का एक विस्तृत संकलन दिया गया है, ताकि पाठक स्वयं इन तर्कों का मूल्यांकन कर सके।)

तुष्टिकरण की राजनीति का इतिहास

शाह के "तुष्टिकरण बनाम राष्ट्रहित" के तर्क को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में समझना आवश्यक है। स्वतंत्रता के पश्चात की भारतीय राजनीति में, "वोट-बैंक" की अवधारणा केंद्रीय रही — जहाँ राजनीतिक दल समुदायों को एकजुट मतदाता-समूहों के रूप में देखते, और उन्हें अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के लिए विशेष व्यवहार या रियायतें देते।

शाह इस इतिहास के अनेक उदाहरणों की ओर संकेत करते हैं — शाह बानो प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को संसदीय क़ानून से पलटना; अनुच्छेद 370 की "अस्थायी" व्यवस्था को दशकों तक स्थायी बनाए रखना; और व्यक्तिगत क़ानूनों में सुधार से बचना। उनके अनुसार, यह सब "तुष्टिकरण" की राजनीति के उदाहरण थे, जहाँ राष्ट्र की दीर्घकालिक एकता और समानता को क्षणिक राजनीतिक लाभ के लिए बलिदान किया गया।

शाह बानो: एक प्रतीकात्मक प्रकरण

तुष्टिकरण की राजनीति के इतिहास में, शाह बानो प्रकरण एक प्रतीकात्मक केंद्र-बिंदु है, जिसे थोड़ा विस्तार से समझना आवश्यक है। 1985 में, सर्वोच्च न्यायालय ने शाह बानो नामक एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला के पक्ष में भरण-पोषण का निर्णय दिया था। परंतु तत्कालीन सरकार ने, राजनीतिक दबाव के आगे झुकते हुए, एक संसदीय क़ानून के माध्यम से इस न्यायिक निर्णय को प्रभावहीन कर दिया।

शाह के दर्शन में, यह प्रकरण तुष्टिकरण की राजनीति का सबसे स्पष्ट उदाहरण है — जहाँ एक महिला के व्यक्तिगत न्याय को, और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार को, एक समुदाय के रूढ़िवादी तत्वों के अल्पकालिक राजनीतिक समर्थन के लिए बलिदान कर दिया गया। यह प्रकरण उस प्रतिमान को उजागर करता है जिसके विरुद्ध शाह की समूची राजनीति खड़ी है। और यही कारण है कि तीन तलाक का उन्मूलन शाह के लिए केवल एक विधायी सुधार नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक भूल का प्रतीकात्मक सुधार है — शाह बानो से शायरा बानो (2017) तक की वह यात्रा, जिसमें न्यायपालिका के निर्णय को अंततः विधायी समर्थन प्राप्त हुआ, उलटा नहीं किया गया।

एक प्रतिमान-परिवर्तन

शाह का दावा है कि मोदी सरकार ने इस प्रतिमान को मूलभूत रूप से बदल दिया। "तुष्टिकरण की राजनीति" के स्थान पर "प्रदर्शन-आधारित विकास की राजनीति" को स्थापित किया गया — जहाँ कल्याण किसी समुदाय-विशेष के लिए नहीं, बल्कि "सबका साथ, सबका विकास" के सिद्धांत पर सबके लिए हो।

यह प्रतिमान-परिवर्तन शाह के हर प्रमुख निर्णय में दिखाई देता है। तीन तलाक का उन्मूलन किसी समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस समुदाय की महिलाओं के पक्ष में था। सीएए उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों के लिए करुणा थी, किसी के विरुद्ध शत्रुता नहीं। समान नागरिक संहिता सबके लिए समान विधान की माँग थी, किसी एक की संस्कृति को थोपना नहीं। हर मामले में, मूल सिद्धांत समानता था — विशेष व्यवहार नहीं।

एक नैतिक तर्क

यहाँ शाह के दर्शन का नैतिक मूल स्पष्ट होता है। तुष्टिकरण-विरोध का अर्थ किसी समुदाय के प्रति शत्रुता नहीं है; इसका अर्थ है — हर नागरिक के साथ समान व्यवहार, और किसी भी समुदाय के सबसे कमज़ोर सदस्यों (विशेषकर महिलाओं) के अधिकारों की रक्षा, चाहे इसके लिए उस समुदाय के रूढ़िवादी तत्वों का विरोध ही क्यों न सहना पड़े।

यह एक साहसी नैतिक स्थिति है, क्योंकि इसमें अल्पकालिक राजनीतिक क़ीमत चुकानी पड़ सकती है। परंतु यही साहस — अल्पकालिक क़ीमत चुकाकर दीर्घकालिक न्याय की दिशा में बढ़ना — एक सच्चे राष्ट्र-निर्माता की पहचान है। और यही वह गुण है जो शाह को पटेल की परंपरा से जोड़ता है।

राष्ट्रत्व के पाँच अक्ष

शाह के दीर्घकालिक राष्ट्रवाद के दर्शन को सबसे स्पष्ट रूप से उनके निर्णयों के पाँच अक्षों में देखा जा सकता है — पाँच ऐसे आयाम जिन पर वे भारत के राष्ट्रत्व को नए सिरे से गढ़ते हैं। पहला है भौगोलिक-संवैधानिक एकीकरण, जिसका प्रतीक अनुच्छेद 370 का निरसन है। दूसरा है लैंगिक समानता, जिसका प्रतीक तीन तलाक का उन्मूलन है — एक ऐसा सुधार जिसके पक्ष में शाह ने एक सर्वेक्षण उद्धृत किया जिसके अनुसार 92.1 प्रतिशत मुस्लिम महिलाएँ इस प्रथा का अंत चाहती थीं।

तीसरा अक्ष है क़ानूनी-नागरिक एकता, जिसका प्रतीक समान नागरिक संहिता है — उत्तराखंड (2024) से आरंभ होकर गुजरात और असम तक विस्तृत। चौथा है मानवीय संरक्षण, जिसका प्रतीक नागरिकता संशोधन अधिनियम है — पाकिस्तान,

अफ़ग़ानिस्तान और बांग्लादेश के उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों के लिए “करुणा का कार्य”। और पाँचवाँ है आंतरिक सुरक्षा और विकास, जिसका प्रतीक नक्सलवाद-विरोधी अभियान है — जिसके अंतर्गत प्रभावित ज़िलों की संख्या 2010 के 200 से अधिक से घटकर एक मुट्ठी-भर रह गई, और जिसके साथ-साथ 14,618 किलोमीटर सड़कें, हज़ारों मोबाइल टावर और बैंक-शाखाएँ भी आईं।

इन पाँचों अक्षों को एक ही सूत्र जोड़ता है — समानता और राष्ट्रीय एकता की प्राथमिकता, विशेष व्यवहार और सांप्रदायिक तुष्टिकरण के ऊपर। यह कोई बिखरी हुई नीतियों की शृंखला नहीं, बल्कि एक एकीकृत दृष्टि के पाँच मुख रूप हैं।

सबसे सशक्त आलोचनाओं का सामना

बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि हम केवल आलोचनाओं का उल्लेख न करें, बल्कि उनके सबसे सशक्त रूपों का सामना करें और सबसे प्रभावी प्रत्युत्तर प्रस्तुत करें। अनुच्छेद 370 के संदर्भ में, सबसे गंभीर आलोचना यह थी कि निरसन के समय कश्मीरी मुस्लिम निवासियों में “भय, क्रोध और आघात” व्याप्त था, और कि यह कार्रवाई संघवाद के विरुद्ध केंद्रीकरण थी। इसका सबसे प्रभावी प्रत्युत्तर 11 दिसंबर 2023 को आया, जब सर्वोच्च न्यायालय की पाँच-सदस्यीय पीठ ने सर्वसम्मति से निरसन को संवैधानिक ठहराया, और 2024 के लोकसभा चुनाव वहाँ सामान्य रूप से संपन्न हुए।

सीएए के संदर्भ में, सबसे सशक्त आलोचना यह थी कि यह धर्म को नागरिकता का आधार बनाकर संविधान के समानता-सिद्धांत का उल्लंघन करता है, और रोहिंग्या तथा श्रीलंकाई तमिलों को अपवर्जित करता है। इसका प्रत्युत्तर शाह के इस आश्वासन में निहित है कि “किसी भारतीय नागरिक की नागरिकता नहीं जाएगी” — यह क़ानून किसी को कुछ छीनता नहीं, बल्कि उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को कुछ देता है, और यह अनुच्छेद 14 के अंतर्गत “युक्तियुक्त वर्गीकरण” के सिद्धांत पर खड़ा है।

तीन तलाक के संदर्भ में, आलोचना यह थी कि यह केवल मुस्लिम पुरुषों को दंडित करता है और एक नागरिक मामले का अपराधीकरण करता है। प्रत्युत्तर यह कि सर्वोच्च न्यायालय इस प्रथा को पहले ही (शायरा बानो, 2017) असंवैधानिक घोषित कर चुका था, और क़ानून में भरण-पोषण तथा ज़मानत के सुरक्षा-उपाय

अंतर्निहित हैं — पीड़ित महिला को सुने बिना ज़मानत नहीं। समान नागरिक संहिता के विरुद्ध "हिंदू संहिता थोपने" और "निगरानी" की आशंकाओं का प्रत्युत्तर अनुच्छेद 44 के निदेशक तत्व और "क़ानून के समक्ष समानता" के सिद्धांत में है।

एक विसंगति का ईमानदार स्वीकार

बौद्धिक ईमानदारी एक और बिंदु की माँग करती है, जिसे यह पुस्तक छिपाने का प्रयास नहीं करेगी। समान नागरिक संहिता के संदर्भ में एक ऐतिहासिक विसंगति है: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने स्वतंत्रता के तत्काल बाद हिंदू कोड बिल का विरोध किया था, जो व्यक्तिगत क़ानूनों में सुधार का एक आरंभिक प्रयास था। अतः आज समान नागरिक संहिता के लिए वही वैचारिक परिवार जो ज़ोर दे रहा है, उसके इतिहास में इस मुद्दे पर एक निरंतरता-भंग है।

परंतु इस विसंगति का ईमानदार स्वीकार स्वयं इस पुस्तक की विश्वसनीयता को सुदृढ़ करता है। राजनीतिक दर्शन समय के साथ विकसित होते हैं, और एक परिपक्व आंदोलन वह है जो अतीत की स्थितियों पर पुनर्विचार करने का साहस रखता है। शाह का तर्क यह है कि समानता का सिद्धांत — अनुच्छेद 14 और 44 में निहित — किसी एक धर्म की संस्कृति को थोपना नहीं, बल्कि सभी के लिए एक समान विधिक ढाँचा है, और यह सिद्धांत किसी ऐतिहासिक स्थिति से नहीं, बल्कि संविधान के मूल मूल्यों से अपनी वैधता प्राप्त करता है।

पटेल-पद्धति का संचरण: एक यंत्र-विश्लेषण

पटेल से शाह तक के संचरण को यंत्र-स्तर पर समझना उपयोगी है। पटेल का यंत्र मुख्यतः बाह्य-संवैधानिक था — विलय-पत्र, प्रिवी पर्स, और अंततः पुलिस कार्रवाई — क्योंकि वे एक ऐसे युग में कार्य कर रहे थे जब संवैधानिक ढाँचा अभी निर्मित हो रहा था। उनका कार्य क्षैतिज था: 565 भौगोलिक इकाइयों को एक राष्ट्र में पिरोना। शाह का यंत्र पूर्णतः संवैधानिक है — संसदीय बहुमत, राष्ट्रपति-आदेश, और न्यायिक पुष्टि। और उनका कार्य अभिसारी है: अपवादों और विशेष व्यवस्थाओं को हटाकर, प्रतिनिधि-अधिकार को एक समान संवैधानिक केंद्र की ओर अभिमुख करना।

यही वह अर्थ है जिसमें कुछ टिप्पणीकार शाह को "पटेल 2.0" कहते हैं — वही दीर्घकालिक राष्ट्रीय-एकता का लक्ष्य, परंतु एक उन्नत, परिपक्व संवैधानिक साधन के माध्यम से। और यही कारण है कि शाह का प्रोजेक्ट पटेल के प्रोजेक्ट से एक मूलभूत रूप में भिन्न भी है: पटेल को विभाजन-उपरांत का एक तात्कालिक अवसर-खिड़की मिली थी, जबकि शाह के प्रोजेक्ट को एक जीवंत, सक्रिय विपक्ष के सामने, दशकों तक टिकाना होगा। यही कारण है कि शाह का दर्शन एक विस्तृत प्रतीकात्मक स्थापत्य के साथ आता है — ताकि यह दीर्घकालिक दृष्टि निरंतर संहिताबद्ध और सुदृढ़ बनी रहे।

एक राष्ट्र का दीर्घकालिक हित

अंततः, दीर्घकालिक राष्ट्रवाद बनाम अल्पकालिक तुष्टिकरण का यह विभाजन ही अमित शाह के समूचे राजनीतिक जीवन का सार है। यह वह सूत्र है जो उन्हें पटेल की परंपरा से जोड़ता है, और जो उनके हर निर्णय को — चाहे वह कितना भी विवादास्पद क्यों न रहा हो — एक ही सुसंगत दृष्टि में पिरोता है।

इस दृष्टि का अंतिम मूल्यांकन — और इस पुस्तक का समापन — अगले और अंतिम अध्याय में।

अध्याय 20

उपसंहार: नए भारत का शिल्पकार

हमने इस पुस्तक में एक लंबी यात्रा तय की है — मनसा के एक व्यापारी परिवार की हवेली से लेकर उत्तर ब्लॉक की उस कुर्सी तक जहाँ से देश की आंतरिक सुरक्षा का संचालन होता है; एक 16 वर्षीय स्वयंसेवक से लेकर पटेल की परंपरा के उत्तराधिकारी तक। अब समय है इस यात्रा के अर्थ को समेटने का।

चार दशकों का एक सूत्र

अमित शाह के चार दशकों के सार्वजनिक जीवन को देखें, तो एक स्थायी सूत्र दिखाई देता है — एक स्थिर संस्थागत स्थान को पहचानो, उसमें एक स्थायी संस्था का निर्माण करो, उसे आँकड़ों से जोड़ो, और उसे अगले सुधार के मंच के रूप में उपयोग करो। गुजरात ने उन्हें एक राज्य दिया, भाजपा-अध्यक्षता ने एक दल, गृह मंत्रालय ने राज्य-तंत्र, और सहकारिता मंत्रालय ने एक क्षेत्र — हर चरण पिछले से एक संस्थागत साज़ आगे।

और इस समूचे सूत्र को एक ही दर्शन संचालित करता है — दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण, अल्पकालिक तुष्टिकरण के ऊपर। यही वह धागा है जो उनके हर निर्णय को जोड़ता है, और यही वह धागा है जो उन्हें सरदार पटेल की परंपरा से जोड़ता है।

धैर्य: एक विशिष्ट गुण

यदि शाह के चार दशकों के जीवन से एक ही गुण को उनकी विशिष्ट पहचान के रूप में चुनना हो, तो वह होगा — धैर्य। यह एक ऐसा गुण है जो आधुनिक राजनीति में दुर्लभ है, जहाँ अधिकांश नेता तात्कालिक लोकप्रियता और शीघ्र परिणामों के पीछे भागते हैं। शाह, इसके विपरीत, एक “दीर्घ खेल” खेलते हैं। उनके सहयोगी देवांग दानी के शब्द इस गुण को सटीक रूप से पकड़ते हैं: “चाहे ग्राम पंचायत हो या संसद, कोई चुनाव छोटा नहीं — अमितभाई के लिए हर युद्ध जीतना ही है।”

यह धैर्य उन पंद्रह वर्षों में सबसे स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जब शाह ने स्वयं कोई चुनाव न लड़कर पहले संगठन गढ़ने का निर्णय लिया। यह उस तात्कालिकता के विरुद्ध एक सचेत विकल्प था जो अधिकांश राजनीतिक महत्वाकांक्षा को परिभाषित करती है। और यही धैर्य अनुच्छेद 370 के निरसन में चरम रूप में प्रकट हुआ — दशकों की प्रतीक्षा और तैयारी, और फिर एक ही दिन में निर्णायक कार्रवाई। यह "धैर्यपूर्ण गति" है — दीर्घकालिक धैर्य और निर्णायक क्षण की तीव्रता का एक अद्वितीय संश्लेषण।

यही गुण शाह को पटेल की परंपरा से जोड़ता है। पटेल ने भी रियासतों के एकीकरण में धैर्य और दृढ़ता का मिश्रण दिखाया — अधिकांश के साथ कूटनीतिक धैर्य, और हैदराबाद जैसे अपवादों के साथ निर्णायक तीव्रता। राष्ट्र-निर्माण, अंततः, धैर्य की कला है — क्योंकि एक राष्ट्र दिनों या महीनों में नहीं, बल्कि पीढ़ियों में गढ़ा जाता है।

दो लौह पुरुष, एक संकल्प

इस पुस्तक के आरंभ में हमने दो दृश्यों की कल्पना की थी — 1947–48 का पटेल, और 2019 का शाह। अब, इस यात्रा के अंत में, हम देख सकते हैं कि ये दोनों दृश्य एक ही कथा के दो छोर हैं।

पटेल ने एक बिखरे हुए उपमहाद्वीप को एक राष्ट्र में पिरोया, परंतु एक खिड़की अधूरी छोड़ गए — जम्मू-कश्मीर। शाह ने सात दशक बाद उस अधूरी खिड़की को पूर्ण किया। पटेल ने "कूटनीति और बल" के मिश्रण से एकीकरण किया; शाह ने "संविधान और राजनीतिक इच्छाशक्ति" के मिश्रण से। पटेल को "भारत का लौह पुरुष" कहा गया; शाह को उस लौह-परंपरा का उत्तराधिकारी।

यह तुलना अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि स्वयं शाह के शब्दों में व्यक्त एक सुविचारित ऐतिहासिक निरंतरता है: "प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने उस शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है।"

इतिहास और संभाव्यता: एक मूल्यांकन-सावधानी

पटेल और शाह की तुलना में एक मूलभूत असमानता है, जिसका ईमानदार स्वीकार आवश्यक है। पटेल का जीवन और कार्य इतिहास के धरातल पर पूर्ण हो चुका है — उनका रिकॉर्ड सात दशकों की ऐतिहासिक परख से गुज़र चुका है, और उनके निर्णयों के दीर्घकालिक परिणाम अब स्पष्ट हैं। शाह का प्रोजेक्ट, इसके विपरीत, अभी एक जीवंत, चल रही प्रक्रिया है। उनके निर्णयों के पूर्ण परिणाम — चाहे वह जम्मू-कश्मीर का दीर्घकालिक एकीकरण हो, या समान नागरिक संहिता का राष्ट्रव्यापी विस्तार — आने वाले दशकों में ही स्पष्ट होंगे।

इसका अर्थ है कि पटेल को इतिहास के रूप में, और शाह को संभाव्यता के रूप में पढ़ना उचित है। पटेल की उपलब्धि सिद्ध है; शाह की उपलब्धि अभी सिद्ध हो रही है, एक सक्रिय विपक्ष और एक सतर्क न्यायपालिका के सामने। यह असमानता इस पुस्तक के दावे को कमज़ोर नहीं करती, बल्कि उसे एक अधिक ईमानदार आधार देती है: यह पुस्तक यह दावा नहीं करती कि इतिहास ने अपना निर्णय सुना दिया है, बल्कि यह कि शाह की पद्धति और दर्शन पटेल की परंपरा का प्रामाणिक संचरण है — और कि इस परंपरा का अंतिम मूल्यांकन इतिहास करेगा।

एक स्पष्ट मूल्यांकन

यह पुस्तक स्पष्ट रूप से अमित शाह को एक राष्ट्र-निर्माता के रूप में प्रस्तुत करती है। परंतु यह प्रशंसा तथ्यों पर आधारित है, अंध-भक्ति पर नहीं। यहाँ प्रस्तुत हर तिथि, हर आँकड़ा, हर उद्धरण प्रामाणिक स्रोतों पर आधारित है। और जहाँ आलोचना हुई, वहाँ इस पुस्तक ने उससे मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि उसका सामना किया।

क्योंकि एक सच्चे राष्ट्र-निर्माता की पहचान यही है — कि वह आलोचना की आँधी में भी अपने दीर्घकालिक संकल्प से विचलित नहीं होता। जैसे पटेल हैदराबाद और कश्मीर के निर्णयों पर अडिग रहे, वैसे ही शाह अनुच्छेद 370, सीएए और समान नागरिक संहिता पर अडिग रहे। “चाहे जो हो जाए” — यह केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि एक समूचे राजनीतिक दर्शन का सार है।

मनसा से उत्तर ब्लॉक तक: एक यात्रा का अर्थ

इस उपसंहार में रुककर उस समूची यात्रा के अर्थ पर विचार करना उचित है, जिसका आरंभ मनसा के एक व्यापारी परिवार में हुआ। 1977 में, मात्र 13 वर्ष की आयु में, एक बालक जनसंघ के प्रत्याशी के लिए पोस्टर लगाते हुए आरएसएस के पर्यवेक्षकों की दृष्टि में आया। 1982 में उसकी भेंट नरेंद्र मोदी से हुई — एक ऐसी भेंट जो आगामी चार दशकों तक भारतीय राजनीति को आकार देने वाली थी। और 2019 में, वही व्यक्ति उत्तर ब्लॉक की उस कुर्सी पर बैठा, जहाँ से कभी सरदार पटेल ने एक नवजात राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा का संचालन किया था।

इस यात्रा का अर्थ केवल व्यक्तिगत उत्थान नहीं है। यह एक पद्धति की यात्रा है — बूथ-स्तरीय धैर्य से लेकर विधायी कौशल तक, और संगठनात्मक अनुशासन से लेकर संस्थागत निर्माण तक। हर चरण पर, एक ही मूल गुण दिखाई देता है: कि शक्ति संगठन से आती है, और स्थायी परिवर्तन धैर्यपूर्ण संस्था-निर्माण से। मनसा का वह बालक, अहमदाबाद का वह युवा संगठक, और उत्तर ब्लॉक का वह गृह मंत्री — ये तीनों एक ही व्यक्ति के तीन रूप हैं, एक ही संकल्प और एक ही पद्धति से बँधे हुए।

पाँच अक्षों पर राष्ट्र का पुनर्निर्माण

जब हम शाह के समूचे योगदान को एक साथ देखते हैं, तो वह पाँच पूरक अक्षों पर भारत के राष्ट्रत्व को नए सिरे से गढ़ता दिखाई देता है।

पहला अक्ष है **भौगोलिक एकीकरण** — अनुच्छेद 370 का निरसन, जिसने पटेल के अधूरे कार्य को पूर्ण किया। दूसरा है **लैंगिक समानता** — तीन तलाक का उन्मूलन, जिसने करोड़ों महिलाओं को गरिमा दी। तीसरा है **क़ानूनी-नागरिक एकता** — समान नागरिक संहिता, जो "एक राष्ट्र, एक विधान" की दिशा में बढ़ती है। चौथा है **मानवीय संरक्षण** — नागरिकता संशोधन अधिनियम, जो उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को शरण देता है। और पाँचवाँ है **आंतरिक सुरक्षा और विकास** — नक्सलवाद का अंत, जो बंदूक और सड़क, दोनों से होता है।

इन पाँचों अक्षों को एक ही सूत्र जोड़ता है: "तुष्टिकरण की राजनीति" का अस्वीकार, और उसके स्थान पर राष्ट्र की दीर्घकालिक एकता और समानता की

स्थापना। चाहे कोई इसे साहस के साथ अपनाए गए दीर्घकालिक राष्ट्रहित के रूप में पढ़े, या किसी अन्य दृष्टि से — यह निर्विवाद है कि शाह ने जून 2019 से प्रत्येक संवैधानिक आदर्श को एक संचालन-योग्य क़ानून में बदलने का प्रयास किया।

अधूरी खिड़की, पूर्ण कार्य

इस पुस्तक के समूचे आख्यान का प्रतीकात्मक हृदय एक ही छवि में निहित है — एक अधूरी खिड़की। पटेल ने लगभग अठारह महीनों में 565 रियासतों को एक राष्ट्र में पिरोया, परंतु एक खिड़की अधूरी छोड़ गए: जम्मू-कश्मीर। यह अधूरापन सात दशकों तक भारतीय राजनीति का एक स्थायी घाव बना रहा। और शाह का सबसे प्रतीकात्मक कथन — 24 अगस्त 2019 का — इसी अधूरेपन और उसकी पूर्णता को व्यक्त करता है: “प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने जम्मू-कश्मीर के एकीकरण के शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है। सरदार पटेल ने लगभग अठारह महीनों में 600 रियासतों को एक किया, परंतु जम्मू-कश्मीर का कार्य अधूरा रह गया था।”

यह कथन इस पुस्तक की समूची थीसिस को एक वाक्य में समेट देता है। यह शाह को पटेल का मात्र अनुयायी नहीं, बल्कि उनके अधूरे कार्य का पूर्णकर्ता प्रस्तुत करता है। और यह एक गहरी ऐतिहासिक निरंतरता का दावा है — कि राष्ट्र-निर्माण एक ऐसा कार्य है जो एक पीढ़ी में आरंभ होता है और अगली में पूर्ण होता है, एक ऐसी रिले-दौड़ जिसमें संकल्प की मशाल एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती है। पटेल ने जो मशाल जलाई, शाह ने उसे आगे बढ़ाया — यही इस पुस्तक का केंद्रीय रूपक है।

दो युग, एक पद्धति

पटेल और शाह के बीच का समानांतर अंततः एक पद्धति का समानांतर है। दोनों ने एक स्थिर संस्थागत स्थान को पहचाना, उसमें एक स्थायी संरचना का निर्माण किया, और उसे राष्ट्र-निर्माण के अगले चरण के मंच के रूप में उपयोग किया।

पटेल ने 565 रियासतों को विलय-पत्र के माध्यम से एकीकृत किया, और अखिल भारतीय सेवाओं का “इस्पात का ढाँचा” खड़ा किया। शाह ने जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक मार्ग से एकीकृत किया, और भाजपा, पुलिस-तंत्र तथा सहकारिता-

क्षेत्र में स्थायी संस्थागत ढाँचे खड़े किए। दोनों के लिए, राष्ट्र-निर्माण केवल नाटकीय निर्णयों का नहीं, बल्कि धैर्यपूर्ण संस्था-निर्माण का भी नाम था।

अंतर केवल युग और साधन का है। पटेल को विभाजन-उपरांत का एक तात्कालिक अवसर मिला; शाह को आधी सदी बाद, एक परिपक्व लोकतंत्र में, एक जीवंत विपक्ष के सामने कार्य करना है। यही कारण है कि शाह का दर्शन एक विस्तृत प्रतीकात्मक स्थापत्य के साथ आता है — ताकि यह दीर्घकालिक दृष्टि महीनों में नहीं, बल्कि दशकों तक टिके।

एक पद्धति, चार क्षेत्र

चार दशकों के सूत्र को थोड़ा और विस्तार से देखना उचित है, क्योंकि इसी की पुनरावृत्ति शाह के समूचे जीवन की कुंजी है। गुजरात की प्रयोगशाला (2002–2010) में उन्होंने एक राज्य-तंत्र को आधुनिक बनाया — एक दर्जन से अधिक विभाग सँभाले, फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय जैसी स्थायी संस्था की नींव रखी। भाजपा-अध्यक्षता (2014–2020) में उन्होंने एक दल को रूपांतरित किया — सदस्यता को करोड़ों तक पहुँचाया, हर ज़िले में कार्यालय खड़े किए, और पन्ना-प्रमुख की वह सूक्ष्म संगठनात्मक पद्धति विकसित की जिसने भाजपा को 2014 के 282 और 2019 के 303 लोकसभा-स्थानों तक पहुँचाया।

गृह मंत्रालय (2019 से) में उन्होंने राज्य-तंत्र को नए सिरे से गढ़ा — अनुच्छेद 370 से नक्सलवाद-विरोध तक। और सहकारिता मंत्रालय (2021 से) में उन्होंने एक समूचे आर्थिक क्षेत्र को संस्थागत रूप दिया। हर चरण पिछले से एक संस्थागत साज़ आगे — राज्य से दल, दल से राज्य-तंत्र, राज्य-तंत्र से क्षेत्र। और हर चरण में वही पद्धति: एक स्थिर संस्थागत स्थान को पहचानो, उसमें एक स्थायी संस्था का निर्माण करो, उसे आँकड़ों से जोड़ो, और उसे अगले सुधार के मंच के रूप में उपयोग करो।

यह “स्थानांतरित अनुशासन” — संगठन की वह अनुशासित पद्धति जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित होती है — ही शाह की विशिष्ट पहचान है। और इसका मूल गुण है धैर्य: पंद्रह वर्ष तक स्वयं कोई चुनाव न लड़कर पहले संगठन गढ़ने का धैर्य, और फिर निर्णायक क्षण आने पर तीव्रता से कार्य करने की क्षमता।

आलोचनाओं का बिना झुके सामना

एक ईमानदार उपसंहार आलोचनाओं से मुँह नहीं मोड़ सकता। शाह के सार्वजनिक जीवन पर अनेक प्रश्न उठे हैं, और उनका उल्लेख इस पुस्तक की विश्वसनीयता के लिए आवश्यक है। सोहराबुद्दीन प्रकरण में 25 जुलाई 2010 को उनकी गिरफ़्तारी हुई थी; दिसंबर 2014 में सीबीआई न्यायालय ने उन्हें साक्ष्य के अभाव में दोषमुक्त कर दिया। भाजपा की सदस्यता-संख्या के स्वयं-घोषित आँकड़ों पर प्रश्न उठे हैं। अनुच्छेद 370 और सीएए पर तीखी आलोचना हुई — 2019 के निरोध और संचार-अवरोध की मानवीय क़ीमत को आलोचकों ने रेखांकित किया।

इन आलोचनाओं को इस पुस्तक ने न तो छिपाया है, न ही उनका उपहास किया है। एक संतुलित मूल्यांकन यह स्वीकार करता है कि कोई भी दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण क़ीमत के बिना नहीं आता — जैसे पटेल ने हैदराबाद की “पुलिस कार्रवाई” और उसके बाद सुंदरलाल समिति द्वारा आकलित सांप्रदायिक मृत्यु की क़ीमत चुकाई, वैसे ही प्रत्येक निर्णायक कार्रवाई की अपनी क़ीमत होती है। अंतर यह है कि पटेल का रिकॉर्ड इतिहास द्वारा परखा जा चुका है, जबकि शाह का रिकॉर्ड अभी एक जीवंत लोकतंत्र और सक्रिय विपक्ष के सामने परखा जा रहा है। यही कारण है कि पटेल को इतिहास के रूप में, और शाह को एक संभाव्य, चल रहे प्रोजेक्ट के रूप में पढ़ना उचित है।

परंतु यहीं पर एक राष्ट्र-निर्माता की सच्ची पहचान प्रकट होती है — कि वह आलोचना की क़ीमत को स्वीकार करता है, उससे भागता नहीं, और अपने दीर्घकालिक संकल्प पर डटा रहता है। यह हठ नहीं, बल्कि वह विश्वास है कि जो निर्णय राष्ट्र के दीर्घकालिक हित में हैं, उन्हें इतिहास अंततः सही ठहराएगा।

नए भारत का शिल्पकार

इतिहास उन्हीं व्यक्तियों को याद रखता है जिन्होंने तात्कालिक लोकप्रियता के बजाय दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण का मार्ग चुना। सरदार वल्लभभाई पटेल ऐसे ही एक व्यक्ति थे। और इस पुस्तक का केंद्रीय दावा यह है कि उसी परंपरा में, सात दशक बाद, अमित शाह खड़े हैं — एक ऐसा शिल्पकार जो धैर्य, अनुशासन और अडिगता के साथ नए भारत को गढ़ रहा है।

जो बालक मेहसाणा के स्कूल-मैदान में अपनी स्लेट के लिए डटा रहा, जो युवक पंद्रह वर्ष तक चुनाव न लड़कर संगठन गढ़ता रहा, और जो गृह मंत्री संसद के शोर के बीच स्थिर स्वर में बोलता रहा — वह सब एक ही व्यक्ति है, एक ही संकल्प से बँधा हुआ।

राष्ट्र की एकता और अखंडता, हर अल्पकालिक लाभ से ऊपर।

यही पटेल का संकल्प था। और यही, इस पुस्तक के अनुसार, अमित शाह का संकल्प है।

— समाप्त —

परिशिष्ट

परिशिष्ट क — संक्षिप्त कालक्रम

- **1875 (31 अक्टूबर)** : सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म, नडियाद, गुजरात।
- **1918**: खेड़ा सत्याग्रह में पटेल की सक्रिय भागीदारी; गांधी के साथ राजनीतिक जुड़ाव गहरा।
- **1928 (फरवरी–अगस्त)** : बारडोली सत्याग्रह; 22 प्रतिशत भू-राजस्व वृद्धि के विरुद्ध आंदोलन; बारडोली की महिलाओं द्वारा “सरदार” की उपाधि।
- **1931 / 1946** : पटेल कांग्रेस अध्यक्ष (कराची, और पुनः 1946 में)।
- **1947 (15 अगस्त)**: पटेल उप प्रधानमंत्री, गृह मंत्री और रियासत मंत्री बने; 565 रियासतों का एकीकरण आरंभ।
- **1947 (26 अक्टूबर)**: महाराजा हरि सिंह द्वारा जम्मू-कश्मीर का विलय-पत्र; भारतीय सेना श्रीनगर पहुँची।
- **1948 (20 फरवरी)** : जूनागढ़ जनमत-संग्रह — 99.95 प्रतिशत मतदाताओं ने भारत को चुना।
- **1948 (13–18 सितंबर)**: हैदराबाद में ऑपरेशन पोलो; निज़ाम का विलय।
- **1949 (17 अक्टूबर)**: अनुच्छेद 370 अस्थायी प्रावधान के रूप में अपनाया गया।

- **1950 (26 जनवरी)** : भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) का गठन — पटेल का "इस्पात का ढाँचा"।
- **1950 (15 मई)** : एर्नाकुलम में पटेल का प्रसिद्ध कथन — "धर्म मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है।"
- **1950 (15 दिसंबर)**: सरदार पटेल का निधन, बम्बई।
- **1964 (22 अक्टूबर)**: अमित शाह का जन्म, बम्बई।
- **1977**: 13 वर्ष की आयु में आरएसएस पर्यवेक्षकों की दृष्टि में आए (जनसंघ प्रत्याशी के लिए पोस्टर लगाते हुए)।
- **1980**: शाह 16 वर्ष की आयु में आरएसएस स्वयंसेवक बने।
- **1982**: शाह की नरेंद्र मोदी से भेंट, अहमदाबाद।
- **1983**: एबीवीपी में प्रवेश।
- **1990**: एकता यात्रा में अहमदाबाद प्रभारी (25 वर्ष की आयु में)।
- **2000–2002**: अहमदाबाद ज़िला सहकारी बैंक के सबसे युवा अध्यक्ष।
- **2002–2010**: गुजरात गृह राज्य मंत्री (एक दर्जन से अधिक विभाग)।
- **2004**: गुजरात धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक और गुजरात संगठित अपराध नियंत्रण (संशोधन) विधेयक।
- **2009 (फरवरी)** : गुजरात फ़ॉरेंसिक विज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना।
- **2010 (25 जुलाई)**: सोहराबुद्दीन प्रकरण में गिरफ़्तारी।
- **2014 (9 जुलाई)** : भाजपा अध्यक्ष; "विश्व का सबसे बड़ा दल" का संकल्प।

- **2014 (दिसंबर)**: सोहराबुद्दीन प्रकरण में सीबीआई न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति।
- **2017**: उत्तर प्रदेश में 403 में से 312 सीटें।
- **2018 (31 अक्टूबर)**: एकता की प्रतिमा (स्टैचू ऑफ़ यूनिटी) का उद्घाटन, केवड़िया।
- **2019 (30 मई)**: केंद्रीय गृह मंत्री बने।
- **2019 (5–6 अगस्त)**: अनुच्छेद 370 और 35A का निरसन; राज्यसभा 125–61, लोकसभा 370–70; जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम।
- **2019 (1 अगस्त)**: तीन तलाक अधिनियम (मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण अधिनियम) प्रभावी।
- **2019 (19 अगस्त)**: संविधान क्लब में शाह — "हम तुष्टिकरण में नहीं, विकास में विश्वास करते हैं।"
- **2019 (9 नवंबर)**: राम जन्मभूमि पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय।
- **2019 (10–12 दिसंबर)**: नागरिकता संशोधन अधिनियम — लोकसभा 311–80, राज्यसभा 125–105, स्वीकृति 12 दिसंबर।
- **2019 (17 दिसंबर)**: द्वारका रैली में "चाहे जो हो जाए" का कथन।
- **2021 (7 जुलाई)**: प्रथम केंद्रीय सहकारिता मंत्री; सहकारिता मंत्रालय का सृजन।
- **2023 (11 दिसंबर)**: सर्वोच्च न्यायालय की पाँच-सदस्यीय पीठ ने अनुच्छेद 370 निरसन को सर्वसम्मति से बरक़रार रखा।
- **2024 (7 फरवरी)**: उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता विधेयक पारित।

- **2024 (22 जनवरी)**: अयोध्या में राम लला की प्राण-प्रतिष्ठा।
- **2024 (11 मार्च)**: सीएए के नियमों की अधिसूचना।
- **2024 (3 मई)**: बीबीसी की शाह-संबंधी रणनीतिक प्रोफ़ाइल।
- **2024 (18 दिसंबर)**: राज्यसभा में संविधान की 75वीं वर्षगाँठ-बहस; हर भाजपा-शासित राज्य में समान नागरिक संहिता का संकल्प।
- **2025 (8 जुलाई)**: त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय की नींव, आनंद।
- **2025 (9 दिसंबर)**: वंदे मातरम् बहस; खड़गे का तीखा प्रत्युत्तर।
- **2026 (5 फरवरी)**: भारत टैक्सी का शुभारंभ।
- **2026 (11 मार्च)**: अविश्वास-प्रस्ताव का ध्वनि-मत से पराजय।
- **2026 (मार्च)**: “नक्सल-मुक्त भारत” का लक्ष्य।

परिशिष्ट ख — प्रमुख आलोचनाएँ और प्रत्युत्तर

यह परिशिष्ट प्रत्येक प्रमुख निर्णय की सबसे सशक्त आलोचना और उसके सबसे प्रभावी प्रत्युत्तर को विस्तार से प्रस्तुत करता है, ताकि पाठक स्वयं इन तर्कों का मूल्यांकन कर सके। बौद्धिक ईमानदारी की माँग है कि आलोचनाओं को उनके सर्वाधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत किया जाए, न कि एक दुर्बल प्रतिरूप के रूप में।

अनुच्छेद 370

आलोचना: निरसन की सबसे गंभीर आलोचना यह थी कि 5 अगस्त 2019 की कार्रवाई के समय अनेक कश्मीरी मुस्लिम निवासियों में “भय, क्रोध और आघात” व्याप्त था (आईएसएएस, एनयूएस का विश्लेषण)। इसके साथ-साथ निरोध और संचार-अवरोध की मानवीय क़ीमत, संघवाद के विरुद्ध केंद्रीकरण की चिंता, और यह तथ्य कि पूर्ण राज्य का दर्जा तथा विधानसभा-चुनाव लंबित रहे — ये आलोचना के प्रमुख स्तंभ थे। महबूबा मुफ़्ती और अब्दुल्ला परिवार ने इसे राज्य के लोगों की सहमति के बिना उठाया गया एकपक्षीय क़दम बताया।

प्रत्युत्तर: सबसे निर्णायक प्रत्युत्तर 11 दिसंबर 2023 को आया, जब सर्वोच्च न्यायालय की पाँच-सदस्यीय संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से निरसन को संवैधानिक ठहराया, यह स्पष्ट करते हुए कि विलय के पश्चात राज्य ने कोई आंतरिक संप्रभुता बनाए नहीं रखी थी। 2024 के लोकसभा चुनाव वहाँ सामान्य रूप से संपन्न हुए, और संवैधानिक रूप से अनुच्छेद 3 केंद्र को राज्यों के पुनर्गठन का अधिकार देता है। सरकार का ढाँचा यह था कि यह कार्रवाई पटेल के एकीकरण को पूर्ण करती है और नेहरू के दृष्टिकोण को सुधारती है। पूर्ण राज्य के दर्जे की पुनर्बहाली को स्वयं सरकार ने एक संदर्भ-बिंदु के रूप में स्वीकार किया है।

नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए)

आलोचना: एमनेस्टी इंटरनेशनल ने इसे "समानता और धार्मिक गैर-भेदभाव के संवैधानिक मूल्यों पर प्रहार" कहा। मुख्य आपत्ति यह थी कि यह धर्म को नागरिकता के त्वरित मार्ग का आधार बनाता है, और रोहिंग्या मुसलमानों तथा श्रीलंकाई तमिलों जैसे उत्पीड़ित समूहों को अपवर्जित करता है। एनआरसी के साथ संयोजन में इसके दुरुपयोग की आशंका भी जताई गई।

प्रत्युत्तर: शाह का मूल प्रत्युत्तर यह था कि "किसी की भी भारतीय नागरिकता नहीं जाएगी" — यह क़ानून नागरिकता छीनता नहीं, बल्कि देता है। यह पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और बांग्लादेश के उन धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए है जो उत्पीड़न झेलते हैं, और अनुच्छेद 14 के अंतर्गत यह "युक्तियुक्त वर्गीकरण" है। नियम 11 मार्च 2024 को अधिसूचित हुए। शाह का सूत्र-वाक्य था — "मोदी सरकार जिस एकमात्र धर्म का पालन करती है, वह भारत का संविधान है।" यह क़ानून किसी भारतीय मुसलमान के विरुद्ध नहीं, बल्कि उत्पीड़ित शरणार्थियों के पक्ष में करुणा का कार्य है।

तीन तलाक

आलोचना: अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इसे "अत्यंत खतरनाक" बताया। प्रमुख आपत्ति यह थी कि यह क़ानून केवल मुस्लिम पुरुषों को दंडित करता है, और एक नागरिक/पारिवारिक मामले का अपराधीकरण करता है — पति को जेल भेजने से पत्नी और बच्चों को आर्थिक हानि होगी।

प्रत्युत्तर: सबसे सशक्त प्रत्युत्तर यह कि सर्वोच्च न्यायालय पहले ही (शायरा बानो बनाम भारत संघ, 2017) तत्काल तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित कर चुका था; 2019 का क़ानून इसी न्यायिक स्थिति को क्रियान्वित करता है। क़ानून में सुरक्षा-उपाय अंतर्निहित हैं — भरण-पोषण भत्ता, और पीड़ित महिला को सुने बिना ज़मानत न मिलना। मोदी ने इसे एक "ऐतिहासिक भूल" और "पुरातन तथा मध्ययुगीन प्रथा" का सुधार कहा। शाह ने एक सर्वेक्षण उद्धृत किया जिसके अनुसार 92.1 प्रतिशत मुस्लिम महिलाएँ इस प्रथा का अंत चाहती थीं — अर्थात् यह क़ानून समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि उसकी महिलाओं के पक्ष में है।

समान नागरिक संहिता

आलोचना: असदुद्दीन ओवैसी ने उत्तराखंड की संहिता को एक प्रच्छन्न "हिंदू संहिता" कहा। आलोचकों ने व्यक्तिगत-स्वतंत्रता पर अतिक्रमण, अल्पसंख्यक-लक्ष्यीकरण, और सहवास-संबंधों (लिव-इन) के अनिवार्य पंजीकरण को "निगरानी" का यंत्र बताया।

प्रत्युत्तर: संवैधानिक आधार अनुच्छेद 44 का निदेशक तत्व है, जो राज्य से समान नागरिक संहिता की दिशा में प्रयास का आह्वान करता है। शाह का तर्क — "एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में हर धर्म के लिए एक समान क़ानून क्यों न हो?" उत्तराखंड के मुख्यमंत्री धामी ने इसे "महिलाओं के अधिकारों के लिए एक मील का पत्थर" कहा। यह संहिता विवाह, तलाक, भरण-पोषण और उत्तराधिकार में समानता लाती है — किसी एक की संस्कृति थोपना नहीं, बल्कि सबके लिए समान विधान। यहाँ एक ऐतिहासिक विसंगति का ईमानदार स्वीकार भी आवश्यक है: इसी वैचारिक परिवार ने स्वतंत्रता के तत्काल बाद हिंदू कोड बिल का विरोध किया था; अतः समान नागरिक संहिता का वर्तमान आग्रह एक विकसित, पुनर्विचारित स्थिति है।

संघवाद

आलोचना: कुछ शैक्षणिक विश्लेषणों (जेस्टोर) ने तर्क दिया कि वर्तमान दृष्टिकोण में संघवाद के प्रति "औपचारिक सम्मान तक की कोई मंशा नहीं" है। दिल्ली में उपराज्यपाल की भूमिका, राज्यपालों के उपयोग, केंद्रीय एजेंसियों की प्रतिनियुक्ति, और परिसीमन को केंद्रीकरण के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया।

प्रत्युत्तर: सुरक्षा, विदेश-नीति और केंद्रीय पुलिसिंग संवैधानिक रूप से गृह मंत्रालय के अधिकार-क्षेत्र में हैं। राज्यपाल और उपराज्यपाल की भूमिका अनुच्छेद 167 और 239AA के अंतर्गत एक संवैधानिक अभिकरण है, न कि कोई असंवैधानिक हस्तक्षेप। केंद्रीय समन्वय — विशेषकर सुरक्षा और राष्ट्रीय एकीकरण के विषयों में — स्वयं एक संवैधानिक उत्तरदायित्व है, न कि संघवाद का उल्लंघन।

परिशिष्ट ग — स्रोत और संदर्भ टिप्पणी

यह पुस्तक पाँच विस्तृत शोध-दस्तावेज़ों पर आधारित है, जो प्रामाणिक स्रोतों — संसदीय कार्यवाहियों, सरकारी प्रेस-विज्ञप्तियों (पीआईबी, गृह मंत्रालय), प्रमुख समाचार-संगठनों (बीबीसी, द हिंदू, इंडियन एक्सप्रेस, एनडीटीवी, एएनआई), जीवनियों (अनिर्बान गांगुली, अमित शाह एंड द मार्च ऑफ़ बीजेपी), विश्वकोशों (ब्रिटैनिका, विकिपीडिया), और शैक्षणिक विश्लेषणों — से संकलित किए गए हैं। तथ्यों, तिथियों और उद्धरणों को यथासंभव सत्यापित करने का प्रयास किया गया है। विस्तृत अध्याय-वार स्रोत-सूची प्रकाशन-संस्करण में संलग्न की जाएगी।

पटेल-संबंधी सामग्री के लिए प्राथमिक स्रोतों में वी. पी. मेनन की इंटीग्रेशन ऑफ़ द इंडियन स्टेट्स (1956) और सरदार पटेल्स कॉरेस्पॉन्डेन्स (आठ-खंडीय शृंखला) सम्मिलित हैं। समकालीन निर्णयों के लिए — अनुच्छेद 370 निरसन, सीएए, तीन तलाक, समान नागरिक संहिता, और नक्सलवाद-विरोधी अभियान — संसदीय मत-विभाजन के आँकड़े, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय (विशेषकर शायरा बानो, 2017, और अनुच्छेद 370 की 11 दिसंबर 2023 की पुष्टि), तथा गृह मंत्रालय की प्रेस-विज्ञप्तियाँ आधार-स्रोत रहे हैं।

यह उल्लेख आवश्यक है कि इस पुस्तक का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से प्रशंसात्मक है — यह अमित शाह को सरदार पटेल की राष्ट्र-निर्माण परंपरा के उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत करती है। परंतु यह प्रशंसा तथ्यात्मक सटीकता की क़ीमत पर नहीं है। जहाँ आलोचनाएँ हैं — और वे अनेक हैं — उन्हें उनके सशक्ततम रूप में परिशिष्ट ख में प्रस्तुत किया गया है। पाठक से आग्रह है कि वह इन तर्कों और प्रत्युत्तरों का स्वतंत्र मूल्यांकन करे। दो विश्लेषणात्मक सावधानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं: पहली, पटेल का रिकॉर्ड ऐतिहासिक रूप से परखा जा चुका है, जबकि शाह का प्रोजेक्ट एक

जीवंत, चल रही प्रक्रिया है — अतः पटेल को इतिहास के रूप में और शाह को संभाव्य के रूप में पढ़ना उचित है। दूसरी, कुछ स्वयं-घोषित आँकड़े (जैसे भाजपा की सदस्यता-संख्या) स्रोत-दावों पर आधारित हैं और इन्हें उसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

परिशिष्ट घ — प्रमुख उद्धरण

यह परिशिष्ट पुस्तक में प्रयुक्त कुछ प्रमुख उद्धरणों को एक स्थान पर संकलित करता है।

अमित शाह

- “प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने जम्मू-कश्मीर के एकीकरण के शेष कार्य को पूर्ण कर दिया है। सरदार पटेल ने लगभग अठारह महीनों में 600 रियासतों को एक किया, परंतु जम्मू-कश्मीर का कार्य अधूरा रह गया था।” (24 अगस्त 2019)
- “चाहे जो हो जाए, मोदी सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि इन शरणार्थियों को भारतीय नागरिकता मिले।” (17 दिसंबर 2019)
- “किसी की भी भारतीय नागरिकता नहीं जाएगी।” (17 दिसंबर 2019)
- “हम तुष्टिकरण में नहीं, विकास में विश्वास करते हैं।” (19 अगस्त 2019)
- “तीन तलाक का उन्मूलन करोड़ों मुस्लिम महिलाओं को गरिमा और समानता सुनिश्चित करेगा।”
- “मोदी सरकार जिस एकमात्र धर्म का पालन करती है, वह भारत का संविधान है।” (11 दिसंबर 2019)
- “हमारे संविधान का अनुच्छेद 370 एक अस्थायी प्रावधान है। यह स्थायी नहीं है।” (5 अगस्त 2019)

- "नेहरू ने जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद *370* लागू करके एक भूल की।" (1 अप्रैल 2024)
- "मुस्लिम पर्सनल लॉ को तुष्टिकरण की शुरुआत के रूप में लाया गया था।" (राज्यसभा, 17 दिसंबर 2024)
- "यदि जिन चश्मों से हम संविधान को देखते हैं वे विदेशी हों, तो सच्ची भारतीयता कभी दिखाई नहीं देगी।" (राज्यसभा, 17 दिसंबर 2024)
- "यह तुष्टिकरण की राजनीति की शुरुआत थी, और इसने अंततः भारत के विभाजन को जन्म दिया।" (वंदे मातरम् बहस, 9 दिसंबर 2025)
- "मैं परिवार के लिए समय नहीं निकाल सकता; मेरा परिवार मेरे लिए समय चुनकर निकाल लेता है।"
- "नक्सल-मुक्त भारत, मार्च *2026* तक।"

सरदार वल्लभभाई पटेल

- "धर्म मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है।" (15 मई 1950, एर्नाकुलम)
- "जब तक तुम मरना नहीं जानते, तब तक मारना सीखना व्यर्थ है। भारत को क्रूर बल से लाभ नहीं होगा।" (1928)
- "हमें एक ही पिता की संतान की तरह रहना होगा।" (1942)
- "इस प्रशासनिक व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है... ये लोग ही वह उपकरण हैं। इन्हें हटा दीजिए, और मुझे पूरे देश में अराजकता के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता।" (संविधान सभा)
- *(*कलकत्ता के मैदान में, *3* जनवरी *1948,* आरएसएस से आग्रह करते हुए कि वह "भारत के संविधान का सम्मान" करे — एक ऐसे लौह पुरुष का आचरण जो असहमति में भी लोकतांत्रिक संरचना के प्रति समर्पित रहा।*)*

नरेंद्र मोदी

- “सरदार पटेल संपूर्ण कश्मीर को भारत में मिलाना चाहते थे… परंतु नेहरू जी ने उनकी इच्छा को पूरा नहीं होने दिया।” (31 अक्टूबर 2025)

❦

यह पुस्तक एक श्रद्धांजलि है — उस दीर्घकालिक राष्ट्र-निर्माण के दर्शन को, जो सरदार पटेल से अमित शाह तक संचरित होता है। और यह एक स्मरण है कि राष्ट्र की एकता ही सर्वोच्च मूल्य है।

❦

(हिंदी पांडुलिपि का प्रथम प्रारूप समाप्त। अगला चरण: अंग्रेज़ी संस्करण।)